योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 53 ; अंक : 13
जनवरी 2023

प्रकाशन तिथि : 01.01.2024

मूल्य - एक प्रति: 22/- , वार्षिक : 230/-

अमृतकण

धनेषु जीवितव्येषु स्त्रीषु चाहार कर्मसु।
अतृप्ता: प्राणिन: सर्वे याता यास्यन्ति यान्ति च।।

धन-सम्पदा, सांसारिक जीवन, भोग विलास और विविध प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजनों के सेवन के मामले में सभी प्राणी अतृप्त रहकर ही चले गये, जायेंगे और जाते रहेंगे।

◆ ◆ ◆

व्यसनेवार्थ कृच्छ्रे वा भये वा जीवितान्तके।
विमृशन्वै स्वयाबुद्ध्या धृति मान्नावसीदति।।

अर्थात् धैर्यवान व्यक्ति, स्वजन का वियोग होने पर, धन का नाश होने पर भय सामने आने पर और प्राणों पर संकट होने पर भी अपनी बुद्धि से काम लेते हैं, अत: कभी दु:खी नहीं होते।

◆ ◆ ◆

भोगो न भुक्ता वयमेव भुक्ता स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ता:।
कालो न यातो वयमेव याता: तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा:।।

अर्थात् भोग को हम नहीं भोगते, भोग हमें ही भोग लेते हैं। तप नहीं तपा जाता है, हम स्वयं तप जाते हैं। काल का अन्त नहीं होता, हम काल में समा जाते हैं। तृष्णायें जीर्ण नहीं होती, हम स्वयं जीर्ण हो जाते हैं। भोग भोगने से तृप्ति कदापि नहीं होती अपितु इच्छायें बलवती होती चली।

●●●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 56 जनवरी 2024 अंक : 10

आददीत परां विद्या प्रयत्नादवरादपि।
अन्त्यादपि परं धर्म स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि।।

अर्थात् स्त्री रत्न को भले ही वह कुलीन न हो, अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करो और नीच व्यक्ति की सेवा करके उससे भी श्रेष्ठ विद्या सीखने का प्रयत्न करो। चाण्डाल द्वारा भी श्रेष्ठ धर्म की शिक्षा ग्रहण करो।

●●●

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY
Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख - योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज	03
2.	सम्पादकीय - आचार्य (डॉ.) दासलाल ब्रह्मचारी	07
3.	नववर्ष 2024 के शुभावतरण पर त्रिभाषा रचित-द्वारका प्रसाद शर्मा	10
4.	श्रीमद् भागवत मे योग परिचर्चा- डा. विजय सिंह	12
5.	ऋषि सत्यकाम के प्रश्न - कृष्ण कुमार पाण्डेय	17
6.	गुरू-मंत्र-पारस समान - अन्नू राम यादव	20
7.	योग स्वस्थ जीवन की कला और विज्ञान है - दिनेश चन्द्र शर्मा	23
8.	लीली धारी की लीलाएँ - जगदीश राए बंसल	28
9.	श्री गुरुदेव भगवान का काशी प्रवास - मिथिलेश	32
10.	योगाभ्यासी श्री एकनाथ जी - श्री केशव देव उपाध्याय	34
11.	उपवास का दर्शन एवं तंत्र - योगी श्री हृदय नारायण जी	39

एक प्रति	: रु.	22.00
वार्षिक शुल्क	: रु.	230.00
द्विवार्षिक	: रु.	400.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.	1500.00

विशेष लेख

योगी को प्रातिभ श्रावण आदि का ज्ञान

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

हमने अपने पूर्व लेखों में योगी को आत्म साक्षात्कार कैसे होता है ? इस विषय को भली प्रकार से समझाने का प्रयत्न किया है। योगी ज्यों–ज्यों अपने हठतर अभ्यास के बल से विवेक ख्याति की ओर बढ़ता है त्यों–त्यों उसकी बुद्धि में ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय हो जाया करता है। जब तक साधक के मन में ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय नहीं होता तब तक अन्य जितनी भी बुद्धियाँ हैं वृक्ष की तरह से वृक्ष से बीज और बीज से वृक्ष की तरह से अन्य ज्ञानों को पैदा करती रहती हैं किन्तु सम्प्रज्ञात समाधि की चतुर्थ श्रेणी में जब योगी पहुँच जाता है तभी उसके मन में ऋतम्भरा प्रज्ञा का प्राकट्य आरम्भ हो जाता है। ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय हो जाने के बाद योगी अतीतानागत सभी प्रकार के ज्ञानों को अपनी बुद्धि में धारण करता है। ऋतम्भरा प्रज्ञा के उदय हो जाने पर योगी किस प्रकार से सभी प्रकार का दृष्टा हो जाता है, योग दर्शन में समाधि पाद के 47वें सूत्र के भाष्य में योगी किस प्रकार सभी कुछ देखता है इस बात को समझाने के लिए एक श्लोक कहा है जो इस प्रकार है–

प्रज्ञाप्रसादमारुह्य अशोच्य: शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानिव शैलस्थ:, सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति।।

अर्थात् योगी जिस समय बुद्धि के उच्चतम प्रासाद पर बैठ जाता है तब वह स्वयं अशोच्य हो जाता है अर्थात् मनुष्य मात्र की चिंता से परे उसकी स्थिति हो जाती है। जिस प्रकार पर्वत शिखर पर बैठा हुआ मनुष्य भूमि पर रहने वाले मनुष्य को भली प्रकार देख लेता है। इसी प्रकार से ऋतम्भरा प्राप्त योगी सभी पदार्थों का ज्ञाता हो जाता है। यह ऋतम्भरा प्रज्ञा श्रुत और अनुमान के विषय से आगे की वस्तु है, क्योंकि यह यथार्थ ज्ञान को प्रकट करने वाली है और इसके उदय हो जाने पर अन्य सभी व्युत्थान संस्कार आशय रुक जाया करते हैं। उनको यह स्वभाव से ही रोक देती है इसलिए भगवान पतञ्जलि देव ने–

तज्ज: संस्कारोऽन्य संस्कार प्रतिबन्धी।

अर्थात् इस बुद्धि के संस्कारों को रोकने वाले हो जाते हैं। अत: मनुष्य जिस समय में

परार्थ भावों को छोड़कर स्वार्थ संयम करता है तो वह आत्म साक्षात्कार की ओर बढ़ जाया करता है और प्रातिभ श्रावण, वेदना दर्श आदियों का ज्ञान बिना किसी प्रयास योगी के मन में अनायास ही प्रकाशित हो जाया करता है। देखिये पतञ्जलि योग दर्शन में भगवान पतञ्जलिदेव स्वयं अपने मुखारबिन्द से क्या उपदेश करते है—

तत: प्रातिभ श्रावण वेदनाऽऽदर्शास्वादवार्ता जायन्ते।।

जिस समय योगी परार्थ भावों को छोड़ करके स्वार्थ में संयम करता है उस समय उसके मन में सर्वप्रथम प्रातिभ ज्ञान का उदय होने लगता है। प्रातिभ ज्ञान को तारक ज्ञान बतलाया गया है और यह विवेक ज्ञान का पूर्ण रूप है। प्रातिभ ज्ञान की स्थिति को इस प्रकार समझ लेना चाहिए जैसे सूर्योदय से पूर्व ऊषा काल में धुंधले–धुंधले प्रकाश में मनुष्य सब कुछ देखने लगता है इसी प्रकार योगी निर्वाणोन्मुखी वृत्ति पैदा हो जाने के बाद ज्यों–ज्यों वह स्वार्थ संयम के बल से आत्म साक्षात्कार की ओर को बढ़ता है त्यों–त्यों प्रातिभ ज्ञान स्पष्ट होने लगता है। ऊषा काल में जैसे पहले मन्द–मन्द प्रकाश उदित होकर वह स्वाभाविक ही उत्तरोत्तर सूर्योदय के प्रचण्ड प्रकाश की ओर बढ़ता चला जाता है और सूर्योदय हो जाने के बाद वह अरुणोदय वाला प्रकाश भी नहीं रहता और सूर्योदय का शुभ प्रकाश हर वस्तु के स्वरूप की यथार्थता से प्रकाशित कर देता है इसी प्रकार से प्रातिभ आदि ज्ञान आत्म साक्षात्कार के पूर्व काफी सत्यार्थ के प्रकाशक हो जाते हैं किन्तु आत्मसाक्षात्कार के हो जाने के बाद योगी जो देखता है सत्य देखता है। उसकी किसी भी चेष्टा में अन्यथात्म नहीं रहता। संसार में इस प्रकार के बहुत से जीव समय–समय पर प्रकट होते रहा करते हैं जिनके जन्म–जन्मान्तर के अभ्यास के फलस्वरूप स्वाभाविक ही प्रातिभ ज्ञान रहा करता है। वह किसी बात को स्पष्ट रूप से तो नहीं कह सकते कि क्या होना है और कैसा होना है किन्तु उनकी बुद्धि के अन्दर यह निश्चय रहा करता है कि अमुक बात इस प्रकार से होने वाली है ऐसी ही होगी क्योंकि मेरी बुद्धि में यह विचार दृढ़ हो रहे हैं। इस प्रकार के साधक भव प्रत्यय वाले साधक कहलाया करते हैं। योग दर्शन के समाधि पाद में यह बात भगवान पतञ्जलिदेव ने अपने मुखारबिन्द से स्वयं स्पष्ट कर दी है—

भव प्रत्ययोविदेह प्रकृति लयानाम्।

अर्थात्—विदेहानां देवानां प्रकृतिलयानाञ्च योगिनाम भव प्रत्ययो भवति। जो योगी योग भ्रष्ट हो जाने पर स्वर्गादि लोक लोकान्तरों को चले जाया करते हैं और बाद में पुण्योपभोग के पश्चात् जब उनको पुन: मनुष्य लोक में जन्म लेना पड़ता है तो देव लोक में जो ज्ञान उनको दूर दर्शन दूर स्वर्ण आदि के स्वाभाविक प्राप्त थे वह यहाँ जन्म लेने के बाद भी उनके मनों में थोड़े–थोड़े प्रकट होते रहा करते हैं। इसी प्रकार से जो योगी अभी आत्म साक्षात्कार

तक नहीं पहुँच पाये और उनके शरीर का अन्तकाल आ गया वे योगी प्रकृतिलीन योगी कहलायेंगे। यद्यपि यथार्थ रूप में वे स्वार्थ संयम करके पौरुषेय ज्ञान को प्राप्त नहीं हुए किन्तु फिर भी उन्होंने थोड़ा–थोड़ा निर्वाणोन्मुखी वृत्ति का आश्रय लिया ही था, इतने में ही देहावसान का संयम आ गया। ऐसी स्थिति में प्रकृति लीन होना ही उनके लिये स्वाभाविक हो गया। ऐसी स्थिति में प्रकृति लीन होने पर क्योंकि उनका चित्त साधिकार है और अपने उस साधिकार चित्त के द्वारा ही वे लोग **'कैवल्य पदमिवानु भवन्त'** की स्थिति को प्राप्त हो गये हैं किन्तु चित्त के साधिकार रहने के कारण उनका जन्म होना भी अवश्यम्भावी है और जन्म लेने पर पूर्व ज्ञान का उदय भी अवश्यम्भावी है। इसलिए ऐसे लोगों को भी प्रातिभ ज्ञान का आभास रहा करता है। इस विषय को अखिलात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन का प्रश्नोत्तर देते हुए इस प्रकार से स्पष्ट कर दिया है–

पार्थ नैवेह नामुत्र, विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याण कृत्कश्चिद्, दुर्गतिं तात गच्छति।।

प्राप्य पुण्यं कृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे, योग भ्रष्टेऽभिजायते।।

अथवा योगिनामेव, कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लतरं लोके, जन्म यदीदृशम्।।

तत्र तं बुद्धि संयोग, लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन।।

अर्जुन का प्रश्न था योग भ्रष्ट व्यक्ति की क्या गति होती है ? उसका उत्तर देते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाते हुए कहा कि हे अर्जुन ऐसे व्यक्ति का इस लोक व परलोक में कहीं भी नाश नहीं होता। वह अपने योगाभ्यास के पुण्य के प्रभाव से दिव्य स्वर्ग लोक को भोग कर पुनः इसी मनुष्य लोक में जन्म ले लेते हैं। उनका जन्म यहाँ पर पवित्र धनवानों के घर में अथवा योगियों के ही कुल में हुआ करता है और इस प्रकार का जन्म भी इस मनुष्य लोक में अत्यन्त दुर्लभ है। यहाँ जन्म लेने के बाद उसको पौर्वदेहि बुद्धि संयोग फिर से प्राप्त हो जाया करता है जिसके फलस्वरूप वे लोग पुनः अपने अभ्यास में लग जाया करते हैं। अतः जन्म जन्मांतर के अभ्यासी कितनी ही आत्माओं को प्रातिभ आदि ज्ञान भी स्वाभाविक रहा करते हैं। जो योगी अभ्यास करते–करते आत्म साक्षात्कार के नजदीक पहुँच गए हैं उनको यह प्रातिभ नाम का तारक ज्ञान तो स्वाभाविक होता ही है किन्तु उसके साथ–साथ श्रावण वेदनादियों के ज्ञान भी स्वाभाविक हो जाया करते हैं। यह याद रखना

चाहिए कि प्रातिभ ज्ञान के अन्दर अतीत, अनागत की वस्तुएँ, सूक्ष्म से सूक्ष्म और छुपी हुई एवं दूर देश वाली वस्तुओं का भी ज्ञान हुआ करता है।

श्रावण ज्ञान

श्रावण–ज्ञान का अर्थ है दूर–दूर की बातें सुनाई देना, सूक्ष्म से सूक्ष्म शब्दों को सुनना यहाँ तक जहाँ तक आकाश का सम्बन्ध है, वहाँ तक की कुल ध्वनियाँ आत्म साक्षात्कार के नजदीक वाला योगी स्वाभाविकतः ही सुन लेता है और उन शब्दों का अर्थ–ज्ञान भी उसको हो जाया करता है।

वेदना

वेदना का अर्थ है दिव्य स्पर्शों का ज्ञान। स्वायत्त चित्त होकर बैठे योगी को यदि कोई आकर के नमस्कार करता है या किसी भी प्रकार का सूक्ष्म स्पर्श उस योगी को होता है तो उसका अनायास ज्ञान योगी को हो जाता है। इसी प्रकार से आदर्श ज्ञान का अर्थ है–सूक्ष्म से सूक्ष्म रूपों को देखना। यह भी योगी को स्थिति में बिना प्रयास के हो जाया करता है। इसी प्रकार से दिव्य आस्वादों का अनुभव करना, दिव्य गन्धों का ग्रहण करना आदि–आदि सब बातें आत्म साक्षात्कार के नजदीक पहुँचते हुए योगी को स्वभाव से होने लगती हैं। आजकल के साधु समाज में हर व्यक्ति जो थोड़ा सा भी भजन ध्यान करता है वह अपने वेश के बल पर बड़े अभिमान पूर्वक कह बैठता है कि अब मेरा तीन लोक में कोई भी कर्त्तव्य नहीं रहा है **प्राप्त प्रापणीयं** जिस वस्तु की आवश्यकता थी वह मैंने प्राप्त कर ली है।

छिन्नः श्लिष्ट पर्वो भव संक्रमः।

पौरी दर पौरी जुड़ा हुआ संसार चक्र मैंने काट दिया है किन्तु यथार्थतः उपरोक्त स्थिति से वे लोग बहुत दूर होते हैं उपरोक्त सारी बातें आत्म साक्षात्कार के सन्निकट पहुँचने वाले योगी को हुआ करती हैं और जिन लोगों को पूर्ण रूपेण आत्म साक्षात्कार हो जाया करता है उनकी सर्व ज्ञातृव्य शक्ति पराकाष्ठा की हुआ करती हैं। अतः साधक को चाहिए कि यथार्थनुभूति के बिना अपने आपको कृतार्थ होने के भ्रम में न डाले एवं अपने आपको अनभ्यासी व अकर्मण्य न बना दे। जो लोग सब प्रकार से इन्द्रियों का दमन करके सफल प्रयास करते हैं। वह अवश्य ही निःश्रेयस सिद्धि अर्थात् स्वरूप साक्षात्कार को प्राप्त हो जाया करते हैं।

सम्पादकीय–

नववर्ष मंगलमय व सुखमय हो!

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

प्रिय गुरुभाई बहिन/ पाठकगण

जय सद्गुरु जी की !

ईसवी कलेण्डर वर्ष के अनुसार सन् 2023 समाप्त हो चुका है और सन् 2024 का आगमन हो रहा है। हमें अपने बीते वर्ष की उपलब्धियों पर एक नजर डालनी चाहिए और जो कार्य अधूरे रह गये हैं उनको पूर्ण करने का प्रयत्न करना चाहिए। अतीत की गल्तियों पर विचार कर उनमें सुधार करने का प्रयत्न करना चाहिए। श्रेय मार्ग या कल्याण मार्ग पर चलने का संकल्प लेना चाहिए। मनुष्य सांसारिक सुख भोगों में अपना समय निकाल देता है और अन्त में पछताता है। "भोगों न भुक्ता वयमेव भुक्ताः" हम भोगों को भोगने का प्रयास करते हैं किन्तु भोग ही हमें खा जाते हैं। हम ही भुक्त हो जाते हैं। मनुष्य को एक सीमित आयु मिली हुई होती है इसी में बहुत काम करने होते हैं। जीवन को क्षणभंगुर कहा गया है–गीता में स्वयं भगवान् कहते हैं–

दुःखालयमशाश्वतम् अर्थात् यह शरीर दुःखों का घर है और अनित्य है। जीवन में शारीरिक और मानसिक नाना प्रकार के रोग लगे रहते हैं इसलिए भगवान कहते हैं–

'अनित्यमसुखं लोकं इमं प्राप्य भजस्व माम्' इस नश्वर शरीर की सार्थकता इसी में है कि हम ईश्वर को प्राप्त कर लें। प्रारब्ध के अनुसार पुण्य का फल सुख और पाप का फल दुःख के रूप में हम भोग ही रहे हैं। भगवान पतंजलि देव जी कहते हैं कि भविष्य के दुःख को हम हटा सकते हैं अतः सूत्र दिया है–**'हेयम् दुःखमनागतम्'** अनागत दुःख को हम हटा सकते हैं। योग साधना के विज्ञान से हम आने वाले समय के दुःख को दूर कर सकते हैं। तप एवं समाधि से क्लिष्ट कर्म रूप दुःख को तनु या हल्का

किया जा सकता है। इसे योग में क्लेश का तन्वीकरण कहते हैं। महर्षि पतंजलि जी महाराज ने पुरुषार्थ के सिद्धान्त को पुष्ट किया है। पुरुषार्थ से मनुष्य अपने भाग्य को बदल सकता है। मनुष्य अपने भविष्य को सुधार सकता है। कुछ लोग कहा करते हैं कि भाग्य में जो लिखा है उतना ही मिलता है। यह ठीक है कि पूर्व कृत कर्म के अनुसार सुख दुःख मिलता है किन्तु यह भी तो सिद्धान्त है कि मनुष्य कर्म के लिए स्वतन्त्र है उसे कर्म करना ही चाहिए। योगी सजग रह कर कर्म करता है। कोई ऐसा नया कर्म संस्कार नहीं बनने देता है जिससे वह और नये संस्कार के भुगतान में पिसता रहे। गीता में इस संदर्भ में भगवान कहते हैं–**योग सन्यस्त कर्माणं ज्ञान संछिन्न संशयम् आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय।** अर्थात् योग ध्यान से जिस योगी ने कर्म फल को नष्ट कर दिया है। ध्यान के प्रभाव से सर्वसंशयो का नाश कर दिया है ऐसे आत्मनिष्ठ योगी को कर्मबन्धन में नहीं डालते। **'ध्यानात् कर्म फल त्यागः, त्यागाच्छान्ति रन्तरम्'** ध्यान का फल कर्मफल का त्याग है। त्याग से परमशान्ति को प्राप्त करता है। साधक को अपने मन में सदा शुभ ही संकल्प रखना चाहिए। वेद वचन है–**'तन्मेमनः शिव संकल्पमस्तु'** मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो। मेरे मन में शुभ विचार ही आयें। मैं मन से पवित्र रहूँ। जो मन से पवित्र होते हैं उन पर ईश्वर की कृपा रहती है। जैसा कि बाईबिल में भी आया है–

'Blessed are the pure in heart for they shall see God'. पवित्रात्मा ईश्वर–दर्शन का अधिकारी होता है। मन का कालुष्य ही शारीरिक व मानसिक रोग के कारण होते हैं। साधक को अपने मन में यह विचार करना चाहिए कि मैं जन्मों–जन्मों से नाना शुभाशुभ योनियों में भटक रहा हूँ। अब की बार परमात्मा ने मुझे कृपा करके मानव देह प्रदान किया है अतः मैं आत्मोत्थान का प्रयास करूँ। गर्भोपनिषद में आया है कि गर्भ में सातवें माह में इसे दिव्य–दृष्टि मिलती है उस समय वह तरह–तरह की प्रतिज्ञायें करता है। वह कहता है–

'यदि योन्यः प्रमुच्येऽहं सांख्य योगमभ्यसे।' यदि अब की बार मैं सुरक्षित बाहर निकल आऊँ तो मैं सांख्य–योग, ध्यान योग का अभ्यास करूँगा जिससे मैं इस अशुभ संसार सागर से पार हो जाऊँ। इस प्रकार से जीव गर्भ में प्रतिज्ञायें करता है किन्तु जन्म लेने के बाद वैष्णवी वायु के स्पर्श लगते ही व॰ सब कुछ भूल जाता है। गर्भ के कष्ट तथा पूर्व जन्म की स्मृति रूप क्लेशों को याद नहीं रखता है। मनुष्य को शास्त्रों में

चतुर्विध पुरुषार्थ की आज्ञा दी गई। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्टय कहलाते हैं। आत्मा को पतन में न गिरने देना ही धर्म है इसलिए याज्ञवल्क्य आदि ऋषियों ने योग को धर्म के रूप में बतलाया है। जीवन को चलाने के लिए अर्थ की आवश्यकता होती है। अतः न्याय से अर्थोपार्जन करना चाहिए। जीव की कामनायें होती हैं उनको प्राप्त करना व उसमें अधिक लिप्त न होना पुरुषार्थ है। अन्त में मुक्ति के लिए प्रयत्न करना **परम पुरुषार्थ कहा गया है।** अस्तु!

हिन्दु मतावलम्बियों का नया वर्ष चैत्र शुक्ल पक्ष से प्रारम्भ होता है। तभी नवरात्र भी प्रारम्भ होते हैं। विक्रम संवत 2081 का शुभारम्भ होगा इस संवत्सर का नाम पिंगल होगा। यह नया वर्ष हम सब के लिए सुखदायी व मंगलमय हो यही श्री प्रभु जी के चरणों में प्रार्थना करते हैं।

जैसा बीज हम बोयेंगे वैसी ही फसल उगेगी। जैसी तैयारी करेंगे वैसा ही परिणाम सामने आयेगा। उत्कृष्ट–आत्म चिन्तन हमारे अन्तःकरण को सद्कर्मों की ओर प्रेरित करता है। प्रारम्भ में हम थोड़ा विचलित हो सकते हैं; परन्तु बार–बार के दृढ़ अभ्यास व संकल्प से हमारा स्वभाव उत्कृष्ट चिन्तन का बन जायेगा, जिससे प्रतिपल आत्म निरीक्षण होता रहेगा।

नववर्ष 2024 के शुभावतरण पर त्रिभाषा-रचित

(संस्कृत, अंग्रेजी तथा हिन्दी में) पद्यात्मिका स्वरचनायें

—द्वारका प्रसाद शर्मा, लखनऊ

(संस्कृत भाषायाम्)

सर्वे निजैः कर्मभिरेव बद्धाः, फलं तदीयं प्रियमप्रियं वा।
भुञ्जामहेऽत्रैव न रमामहे किं, जुगुप्सिते कर्मणि भूय एव।।1।।

द्विष्मो वयं किं न प्रभो! भवद्भ्यः, विघ्नो भवानेव विराजतेऽन्तः।
भूतेषु सर्वेषु तथापि कुर्मः, परोक्षभावेन भवन्निरादरम् ? ।।2।।

सुखं मृग्यमाणा वयं विस्मरामः, सुखं वर्धते तत्तु प्रदीयमानात्।
भवद्दयातः प्रभवेदियत् प्रभो, करवाणि कर्माणि तवार्पितानि।।3।।

याचे भवद्भ्यश्च नवीनवर्षे, कृपामियन्तामपि रोचते चेत्।
यो योऽपि पठितुं प्रयतेत विज्ञः, जीवेच्छतं सुतनुषा, दशासा सुमनसा।।4।।

(This is in Hindi Verses of Sanskriti Verses)

प्रभो! बंधे हम सभी कर्म द्वारा, शुभ या अशुभ कर्म-फल भोगते हैं।
"है कर्म कुत्सित" यह जानते भी, वही कर्म क्या हम न करते रहे हैं।।1।।

प्रभो! जानते, आप सब में विराजें, नहीं आपसे द्वेष हम कर रहे हैं।
हैं द्वेष करते किसी व्यक्ति से भी, निरादर न क्या आपका कर रहे हैं ? ।।2।।

रहे खोजते सुख, यही भूल जाते, सुख ही बढ़ेगा, सुख बाँटने पर।
है कामना हे प्रभो! आपसे यह, करूँ कर्म भी आपको सामने कर।।3।।

नया वर्ष आया नयी याचना यह, स्वीकार मेरी प्रभो ! यह भी कर लें।
रसज्ञ, मर्मज्ञ, सुविज्ञ जो पढ़े, मानी, धनी और शतायु हों वे।।4।।

May the New Year be a Blissful One
(This is in English Verses of Sanskrit Verses)

Tied are we with the actions performed,
And undergo consequently the results auspicious or otherwise
Knowing the actions contemptibility even,
We go on performing becoming unwise. (1)

We Know O Lord ! you are seated in one and all,
Showing hatred into one, do we not hate you O Lord !
Exhibiting hatred against anyone in person,
Do we not indirectly despise much the God. (2)

Sought for is happiness, but forget we,
Sharing pleasures multiplies the happiness.
I wish Lord ! a boon from yourself,
Whatever should I do, may do experiencing your nearness. (3)

The New Year has dawned and again I beseech,
May this be accepted depending upon your benign Choice.
Be it gone through by anyone whosoever he be,
May beget the life's century, the honours & wealth as its price. (4)

"ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः"

श्रीमद्भागवत में योगपरिचर्चा

डा. विजय सिंह

पिछले अध्याय में उज्जैन वासी ब्राह्मण जो कृपण लोभी, कामी, क्रोधी था, परन्तु धन के नष्ट होने से हुये विशाद से उत्पन्न चिंतन ने उसे मौनी अवधूतत्त्व प्रदान कर दिया और वह अन्त में ब्रह्मनिष्ठा में प्रतिष्ठित हो गया। छब्बीसवें अध्याय में राजराजेश्वर पुरुरवा की वैराग्य की कथा भगवान श्रीकृष्ण ने उद्धव जी को सुनाये है। वे कहते है–उद्धव जी! मनुष्य शरीर मेरे स्वरूप ज्ञान की प्राप्ति का मुख्य साधन है। जो सच्चे प्रेम से भक्ति करता है, वह अपने अन्तःकरण में स्थित मुझ परमात्मा को प्राप्त होता है। सबको इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि जो लोग विषयों के सेवन और उदरपोषण में ही लगे हुये हैं, उन असत् पुरुषों का संग कभी न करें। क्योंकि उनका अनुगमन करने वाले पुरुष की वैसी ही दुर्दशा होती है, जैसे अंधे के सहारे चलने वाले अंधे की। उसे घोर अन्धकार में भटकना पड़ता है।

सङ्गं न कुर्यादसतां शिश्नोदरतृपां क्वचित्।
तस्यानुगस्तमस्यन्धे पतत्यन्धानुगान्धवत्॥

3.26.11

उद्धव जी! पहले इलानन्दन पुरुरवा उर्वशी के विरह से बेसुध हो गया था। पीछे उसे बड़ा वैराग्य हुआ तब उसने यह गाथा गायी। राजा पुरुरवा नग्न होकर पागल की भांति अपने को छोड़कर जाती उर्वशी के पीछे दौड़ने लगा और कहने लगा–देवी! निष्ठुर हृदये। थोड़ी, देर ठहर जा, भाग मत। उर्वशी ने उनका चित्त आकृष्ट कर लिया था। वे क्षुद्र विषयों के सेवन में इतने डूब गये थे कि उन्हें वर्षों की रात्रियाँ न जाती मालूम पड़ीं और न तो आती।

इस विक्षेप से पुरुरवा की आत्मचेतना सचेत हुई और सोचने लगा जिसके मन को स्त्री ने चुरा लिया, उसकी विद्या व्यर्थ है। उसका त्याग, तपस्या एकान्त सेवन और मौन व्यर्थ है। देखो! उस कुलटा ने मेरा चित्त चुरा लिया। अब भगवान को छोड़कर और ऐसा कौन है, जो मुझे उसके फंदे से निकाल सके। इसमें उर्वशी को भी क्यों दोष देना जब मैं ही अजितेन्द्रिय होने का अपराधी हूँ।

यह शरीर त्वचा, माँस, रुधिर, स्नायु, मेदा, मज्जा और हड्डियों का ढेर है। इसमें मल,

मूत्र तथा पीब भरा हुआ है। विवेकी पुरुष को चाहिए कि स्त्रियों और सित्र लम्पट पुरुषों का संग न करे। जो वस्तु कभी देखी या सुनी नहीं गयी है, उसके लिये मन में विकार नहीं होता। जो लोग विषयों के साथ मन का संयोग नहीं होने देते, उनका मन अपने–आप निश्चल होकर शांत हो जाता है।

तस्मात् सङ्गो न कर्त्तव्यः स्त्रीषु स्त्रैणेषु चेन्द्रियैः।
विदुषां चाप्यविश्रब्धः षडवर्गः किम मादृश्याम।

24.26.11

जब राजराजेश्वर पुरुरवा के मन में उपरोक्त विचार उठे, तब उन्होंने उर्वशीलोक का परित्याग कर दिया। ज्ञानोदय होने से मोह जाता रहा और उसने अपने हृदय में आत्मस्वरूप से मेरा साक्षात्कार कर लिया और वह शांत भाव में स्थित हो गया।

एवं प्रगायन् नृपदेवदेवः स उर्वशीलोक मथो विहाय।
आत्मानमात्मन्यवगम्य मां वै उपारमज्यान विधूत मोहः।।

25.26.11

उद्धव जी! बुद्धिमान पुरुषों को चाहिए कि पुरुरवा की भांति कुसंग छोड़कर सत्पुरुषों का संग करे। संत पुरुष अपने उपदेशों से उसके मन की आसक्ति नष्ट कर देंगे। शान्ति का अगाध समुद्र संतों के हृदय में लहराता रहता है। उनका चित्त मुझमें लगा रहता है। वे धन्यमाग हैं, जिन्होंने संतों की शरण ग्रहण कर ली है। जो इस घोर संसार–सागर में डूब–उतरा रहे हैं, उनके लिये ब्रह्मवेत्ता और शांत संत ही एकमात्र आश्रय हैं, जैसे जल में डूब रहे लोगों के लिये दृढ़ नौका।

निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम्।
सन्तो ब्रह्मविदः शान्ता नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम्।।

32.26.11

प्रिय उद्धव! संत अनुग्रहशील देवता हैं। संत अपने प्रियतम आत्मा हैं। स्वयं मैं ही संत के रूप में विद्यमान हूँ। इलानन्द पुरुरवा को आत्मसाक्षात्कार होने से उर्वशी लोक की चाहना समाप्त हो गयी। उसकी सारी आसक्तियाँ मिट गयीं और वह आत्माराम होकर स्वच्छन्दरूप से पृथ्वी पर विचरण करने लगा। सत्ताइसवें अध्याय में क्रियायोग के बारे में उद्धवजी ने पूछा–भक्त वत्सल श्रीकृष्ण! जिस क्रियायोग का आश्रय लेकर भक्तजन आपकी अर्चा–पूजा करते हैं; उस आराधनरूप क्रियायोग का वर्णन कीजिए।

क्रियायोगं समाचक्ष्व भवदाराधनं प्रभो।
यस्मात्त्वां ये यथार्चन्ति सात्वताः सात्वतर्षभ।।

1.27.11

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—उद्धव जी! मेरी पूजा की वैदिक, तान्त्रिक और मिश्रित तीन विधियाँ हैं। जो जिसके अनुकूल हो वह उस विधि को अपनाकर आराधना करे। पहले निष्कपट भाव से अपने पिता एवं गुरुदेव का पूजा सामग्रियों द्वारा आराधना करे।

मेरी आठ प्रकार की मूर्ति—पत्थर की, लकड़ी की, धातु की, मिट्टी की व चन्दन की, चित्रमयी, बालुका निर्मित, मनोमयी और मणिमयी है। अचल प्रतिमा के पूजन में प्रतिदिन आवाहन और विसर्जन नहीं करना चाहिए। देखो कोई अभक्त मुझे बहुत सी सामग्री निवेदन करे तो भी मैं सन्तुष्ट नहीं होता। श्रद्धापूर्वक समर्पित जल, धूप, दीप, पुष्प से ही प्रसन्न हो जाता हूँ। बाह्य पूजा करके प्राणायाम के द्वारा और भावनाओं के द्वारा शरीरस्थ हृदय कमल में परम सूक्ष्म और श्रेष्ठदीपशिखा के समान मेरी जीवकला का ध्यान करे। बड़े—बड़े सिद्ध ऋषि—मुनि ॐकार के अकार, उकार, मकार, बिन्दु और नाद इन पाँच कलाओं के अन्त में उसी जीव कला का ध्यान करते हैं। वह जीवकला आत्मस्वरूपिणी है। जब उसके तेज से सारा अन्तःकरण और शरीर भर जाये तब मानसिक उपचारों से मन—ही—मन उसकी पूजा करनी चाहिए। तदन्तर तन्मय होकर मेरी पूजा करे।

पिण्डे वाय्वग्निसंशुद्धे हृत्पद्मस्थां परां मम।
अण्वीं जीवकलां ध्यायेन्नादान्ते सिद्धभाविताम्।

23.27.11

तयाऽऽत्मभूतया पिण्डे व्याप्ते सम्पूज्य तन्मयः।
आवाह्यार्चादिषु स्थाप्य न्यस्ताङ्गं मां प्रपूजयेत।।

24.27.11

उद्धव जी! प्रतिमा आदि में जब जहाँ श्रद्धा हो तब, तहाँ मेरी पूजा करनी चाहिए, क्योंकि मैं सर्वात्मा हूँ और समस्त प्राणियों में तथा अपने हृदय में भी स्थित हूँ। जो मनुष्य इस प्रकार वैदिक, तान्त्रिक क्रियायोग के द्वारा मेरी पूजा करता है, वह इस लोक और परलोक में मुझ से अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करता है।

एवं क्रियायोगपथैः पुमान् वैदिकतान्त्रिकैः।
अर्चन्नुभयतः सिद्धिं मत्तो विन्दत्यभीप्सिताम्।।

49.27.11

जो निष्काम भाव से मेरी पूजा करता है, उसे मेरा भक्तियोग प्राप्त हो जाता है और उस निरपेक्ष भक्तियोग के द्वारा वह स्वयं मुझे प्राप्त कर लेता है।

अट्ठाइसवें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण जी ने उद्धव को परमार्थ तत्त्व का स्वरूप निरूपण बताया है। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा–उद्धव जी! व्यवहार में प्रकृत और पुरुष दो प्रकार से भासित होते हैं परन्तु परमार्थ दृष्टि से सब एक ही हैं। इसलिये सदैव अद्वैत दृष्टि ही रखनी चाहिए। द्वैत नाम की कोई चीज ही नहीं है। जो भी प्रत्यक्ष या परोक्ष वस्तु है, वह आत्मा ही है। वही सर्वशक्तिमान भी है। वही विश्व बनता है, और वही बनाता भी है। उद्धव जी! तुमसे मैंने ज्ञान और विज्ञान की स्थिति का वर्णन किया। जो मेरे वचनों का रहस्य जान लेता है, वह न तो किसी की प्रशंसा करता है और न निन्दा। वह सूर्य के समान समभाव से जगत् में विचरण करता है। उद्धव जी ने पूछा–भगवन! आत्मा द्रष्टा है और देह है दृश्य। फिर यह जन्म–मृत्युरूप संसार है किसे ?

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा–उद्धव जी! देह, इन्द्रिय, प्राण, मन में स्थित आत्मा ही जब उनका अभिमान कर बै ता है तब उसका नाम 'जीव' है। कर्मों का बना हुआ लिंग शरीर है। वही जन्म–मृत्युरूप संसार में चक्कर काटता रहता है। आत्मा और अनात्मा के स्वरूप को पृथक–पृथक जानना ही ज्ञान है। विवेक होते ही द्वैत नष्ट हो जाता है। मन की तीन अवस्थायें होती हैं–जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति। इनके कारण तीन गुण ही हैं। यह जिसकी सत्ता से सत्य के समान प्रतीत होती है और समाधि में इनके न होने पर भी जिसकी सत्ता बनी रहती है, वह तुरीयतत्त्व इन तीनों से परे और इनमें अनुगत चौथा ब्रह्मतत्त्व है। वही सत्य है। मेरे सुदृढ़ भक्तियोग द्वारा मन को गुणातीत बना लेना चाहिए। भलीभांति रोगोपचार न करने से जैसे रोग समूल नष्ट नहीं होता। वैसे ही मन की वासनाएँ और कर्मों के संस्कार मिट नहीं जाते। जो स्त्री–पुरुष आदि में आसक्त है, वह बार–बार अधूरे योगी को बेधता रहता है और उसे कई बार योगभ्रष्ट भी कर देता है।

यथाऽऽमयोऽसाधुचिकित्सितो नृणां
पुनः पुनः संतुदति प्ररोहन्।
एवं मनोऽपक्वकषायकर्म
कुयोगिनं विध्यति सर्वसंङ्गम।। 28.28.11

देवताओं द्वारा प्रेरित शिष्य–पुत्र आदि के द्वारा किये गये विघ्नों से यदि कदाचित अधूरा योगी मार्गच्युत हो जाये तो भी वह अपने पूर्वाभ्यास के कारण पुनः योगाभ्यास में लग जाता है। कर्म आदि में उसकी प्रवृत्ति नहीं होती।

कुयोगिनो ये विहितान्तरायैर्मनुष्यभूतैस्त्रिदशोपसृष्टैः।
ते प्राक्तनाभ्यास बलेन भूयो युञ्जन्ति योगं न तु कर्मतन्त्रम्।।
25.28.11

जो तत्त्व का साक्षात्कार कर लेता है, वह प्रकृति में स्थित रहने पर भी हर्ष–विषाद विकारों से युक्त नहीं होता। क्योंकि वह आनन्दस्वरूप आत्मा के साक्षात्कार से संसार सम्बन्धी सभी आशा–तृष्णायें पहले ही नष्ट कर चुका है।

उद्धव जी! यदि योगसाधना पूर्ण होने के पहले ही किसी साधक का शरीर रोगादि उपद्रवों से पीड़ित हो तो उसे इन उपायों का आश्रय लेना चाहिए। गर्मी–ठंडक आदि को चन्द्रमा–सूर्य आदि की धारणा द्वारा, वात आदि रोगों को वायुधारणा युक्त आसनों के द्वारा और ग्रह सर्पादिकृत विघ्नों को तप, मंत्र और औषधि के द्वारा नष्ट कर डालना चाहिए।

योगिनोऽपक्वयोगस्य युञ्जतः काय उत्थितैः।
उपसर्गैर्विहन्येत तत्रायं विहितो विधिः।। 38.28.11
योगधारणया कांश्चिदासनैर्धारणान्वितैः।
तपोमन्त्रौषधैः कांश्चिदुपसर्गान् विनिर्दहेत्।। 39.28.11

काम, क्रोध आदि विघ्नों को मेरे चिन्तन और नाम संकीर्तन द्वारा नष्ट करना चाहिए। पतन की ओर ले जाने वाले दम्भ–मद आदि विघ्नों को धीरे–धीरे महापुरुषों की सेवा के द्वारा दूर करना चाहिए। कोई–कोई मनस्वी योगी विविध उपायों द्वारा इस शरीर को सुदृढ़ और युवावस्था में स्थिर करके फिर अणिमा आदि सिद्धियों के लिये योग साधन करते हैं। परन्तु बुद्धिमान् पुरुष इसका समर्थन नहीं करते। क्योंकि शरीर का नाश तो अवश्यम्भावी है।

कांश्चिन्ममानुध्यायेन नामसङ्कीर्तनादिभिः।
योगेश्वरानुवृत्त्या वा हन्यादशुभदाञ्छनैः।
केचिद् देहमिमं धीराः सुकल्पं वयसि स्थिरम्।
विधाय विविधोपायैरथ युञ्जन्ति सिद्धये।।41.28.11

जो साधक मेरा आश्रय लेकर मेरे द्वारा कही योगसाधना करता है, उसे कोई विघ्न–बाधा डिगा नहीं सकती। वह आत्मानन्द में मग्न हो जाता है।

योगचर्यामिमां योगी विचरन् मदपाश्रयः।
नान्तरायैर्विहन्येत निःस्पृहः स्वसुखानुभूः।।44।।

''ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः''

प्रश्नोपनिषद–

ऋषि सत्यकाम के प्रश्न

प्र. कृष्ण कुमार पाण्डेय, दरगदवा–गोरखपुर

सत्संग का क्रम महर्षि के आश्रम पर लगातार चलता रहा। ऋषिगण अपने प्रश्नों की जिज्ञासा शान्त होने पर परम आनन्दित होते रहे। एक दिन ऋषि सत्यकाम ने महर्षि पिप्पल से अपनी जिज्ञासा को शान्त करने हेतु जो प्रश्न पूछा वह जीवों के लोक कल्याणकारी प्रश्न था। अपने प्रश्न के माध्यम मनुष्य के साधन के फलस्वरूप किस लोक की प्राप्ति होगी। जीव को उसका क्या फल मिलता है ? इस पर महर्षि ने कहा–हे सत्यकाम यह ''ॐ'' वस्तुत: परमात्मा का ही स्वरूप है। यह परमात्मा से भिन्न नहीं है। यह उन्हीं परमात्मा से ही प्रकट हुआ है। परब्रह्म तथा यही अपर ब्रह्म है। यदि साधक इसी एक ओंकार का जप, स्मरण और चिन्तन करता है तो वह विज्ञान सम्पन्न साधक अपने इष्ट को प्राप्त कर लेता है। साधक अपनी भावना के अनुसार परमात्मा के किसी एक अंग को प्राप्त कर लेता है। किन्तु जो साधक निष्काम भाव से उपासना करता है वह परमात्मा के परमब्रह्म स्वरूप को अवश्य ही प्राप्त कर लेता है। महर्षि ने विषय को विस्तार से बताते हुए कहा कि–**स यद्योकमान्नममिघ्यातीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्याम–भिसम्पद्यते। तमृतो मनुष्यलोकमुपनगनते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमाननुमवति।''**

अर्थात् ओंकार की उपासना करने वाला साधक यदि एक मात्रा से युक्त जिसका स्वरूप ऋग्वेद है, उसका संबंध पृथ्वी लोक से भी है। उसके चिन्तन के फलस्वरूप ऋग्वेद की रचनाएँ पुन: मनुष्य शरीर में प्रविष्ट करा देती है। वह उस नवीन मनुष्य जन्मों में जप ब्रह्मचर्य और श्रद्धा से सम्पन्न उत्तम आचरणों वाला श्रेष्ठ मनुष्य बनकर अतिशय ऐश्वर्य का उपभोग करता है। ऐसे साधक को नीच योनियों में नहीं भटकना पड़ता है। यदि साधक दो मात्रा अर्थात् भू: भव: और जिसका स्वरूप यजुर्वेद है। उसको

यजुर्वेद की ऋचाएँ उसे चन्द्रलोक को प्राप्त करा देती है। किन्तु जैसे ही उपासना के पुण्य क्षय हो जाते हैं। वह पुनः मृत्युलोक में आ जाता है। इसका मूल कारण कर्मयोनि मात्र मनुष्य योनि ही है। और सब योनियाँ भोग योनियाँ हैं। इसलिये पुण्य के क्षीण होते ही वह कर्म हेतु पुनः मृत्यु लोक आ जाता है। मृत्यु लोक में आकर वह अपने कर्मों के अनुसार अमुक योनियों को प्राप्त करता है।

महर्षि ने और विस्तार करते हुए बताया कि सर्वोत्तम उपासना निष्काम को श्रेष्ठ माना गया। जहाँ लोक और परलोक की कोई अभिलाषा नहीं होती है। ऐसे निष्कामी जो ॐकार की उपासना करता है, तो उपासना के फलस्वरूप सद्गुरु कृपा से उसकी स्थिति ऐसी हो जाती है। जैसे सर्प अपनी ही केंचुली को छोड़कर चला जाता है। उसी प्रकार साधक सब बन्धनों से निर्विकार हो जाता है। सामवेद के मंत्र उसे सूर्यलोक से उपर का स्थान गोलोक प्रदान करते हैं। वस्तुतः साधक अपने उस अंशी के पास पहुँच जाता है। जिसके एक अंश से सारे संसार के जीव को अपने में धारण कर रखा है। इसी प्रकार साधक की विभिन्न स्थितियों का वर्णन किया गया है, साधक समुदाय इसके लिये उसके लोक का आनन्द लें। सद्गुरु कृपा प्राप्त साधक इसके स्वरूप को आसानी से समझ सकता है–

विसो भाव मृत्युमताः प्रमूक्ता।
अन्योन्सक्तो अनविप्रयुक्ताः।।
क्रियासु ब्राह्मान्तर मध्यमासु।
समाज प्रसक्ता ।।

आशय यह है कि ओंकार परब्रह्म परमेश्वर का विकट स्वरूप यह संसार है। इसमें जो कुछ भी है सब विनाश शील है। यह रहने वाला नहीं है। यह चाहे किसी भी ऊँची और नीची योनियों का हो। यह जन्म–मृत्यु का चक्कर काटता रहता है। वस्तुतः जो परब्रह्म परमात्मा का अभिलाषी नहीं है तथा उपासना में रत है। जगत के बाह्य रूप में ही आसक्त होता है। वह जन्म–मरण में फँसा रहता है। किन्तु जो साधक सच्चे मन से अन्तर्मन और बाह्य मन दोनों में एक समान रहकर उस परमात्मा का चिन्तन मनन करता है। वह किसी भी प्रकार लिपायमान नहीं होता। मात्र एक लक्ष्य परमात्मा ही रखता है। ऐसा ज्ञानी ही उस परमात्मा को प्राप्त करता है। वह कभी विचलित नहीं होता है। गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है–

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यदन्ता न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।

कठोपनिषद में भी उस पूर्णब्रह्म परमात्मा के बारे में कहा गया है—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेगा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सेर्विविदं विभान्ति।।

अर्थात् उस पूर्णब्रह्म परमात्मा को न सूर्य ही प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा, न तारागण और न यह बिजली ही उसे प्रकाशित कर सकती है। जब सूर्य आदि उस परमात्मा को प्रकाशित नहीं कर पाते तो अन्य की क्या गती होगी। वस्तुतः उस पर ब्रह्म परमात्मा से सब प्रकाशित होते हैं। ऐसे परब्रह्म में लीन होने वाला ही परमार्थ पथ का पथिक हो सकता है।

सवाई धाम में सायं सत्संग चल रहा था। साधक प्रश्नों से अपनी जिज्ञासा शान्त कर रहे थे। यह जीव भी मौजूद था। प्रभु बड़े आनन्द में बोले—हम उपर एक लोक बनाकर वहाँ अपने सभी बच्चों को बुला लेंगे। इतना सुनकर उत्साहित साधक जयकार करके प्रभु चरणों में प्रणत हो गये तब लगा कि अब कोई चिन्ता की बात नही है। हम सभी साधकों को प्रभु अपने पास ही रखेंगे। इस प्रकार प्रभु की वाणी चिन्तन मनन को बाध्य कर देती। इस प्रकार महर्षि ने अपने सत्संग से ऋषियों को तृप्त किया।

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं, कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव, शमः कारणमुच्यते।।

(गीता 6/3)

जो योग में आरूढ़ होना चाहता है ऐसे मननशील योग साधन के लिए निष्काम भाव से कर्त्तव्य कर्म करना ही कारण कहा गया है अर्थात् कर्म करने से ही मनुष्य योगारूढ़ हो सकता है और योगारूढ़ हो जाने पर सब प्रकार के संकल्पों का मिट जाना ही उसके कल्याण का हेतु है।

"ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः"

गुरु-मंत्र-पारस समान

अन्तू राम यादव, प्रयागराज, फोन. 9936678368, 7376691758

प्रातः स्मरणीय हमारे आपके प्राण-धन, करुणा सागर सर्व समर्थ, त्रिकाल-दर्शी, योग योगेश्वर अनन्त श्री दादा गुरुदेव एवं सद्गुरुदेव भगवान के कमलवत् चरणों में कोटिशः नमन। गुरु-मंत्र में कितनी शक्ति निहित है, इस तथ्य को योग साधना में आगे बढ़ चुके साधक अच्छी तरह जानते हैं। प्रस्तुत लेख के माध्यम से नये साधकों को गुरु मंत्र की अपार शक्ति एवं उसकी महिमा के बारे में अवगत कराने का यह एक छोटा सा प्रयास है।

गुरु-मंत्र शिष्य की मानसिक चेतना की दशा व दिशा को आमूल-चूल बदल देता है। यह बदलाव लोहे को सोने में बदलने जैसा है। पारस समान गुरु-मंत्र के छूते ही शिष्य का सब कुछ बदल जाता है। जैसे कालिख भरा लोहा, पारस के स्पर्श मात्र से स्वर्णिम आभा बिखेरने लगता है।

स सत्य को प्रमाणित करने के लिये एक बालक के जीवन में घटी अद्भुत घटना का उल्लेख करना समीचीन प्रतीत हो रहा है। साधना एवं गुरु-कृपा से अनजान चित्त के लिये यह पारस कथा अतिशयोक्ति भरा झूठ लग सकती है। परन्तु जिन्हें गुरु की कृपा-छाँव मिली है, वे भली-भाँति जानते हैं कि गुरुदेव द्वारा प्रदत्त महामंत्र की छुअन में सारे आश्चर्य जनक परिवर्तन समाये हैं। बालक की संक्षिप्त कथा कुछ इस प्रकार है-

पश्चिम बंगाल के एक गाँव में एक बालक का जन्म हुआ। बालक बचपन से ही बहुत सीधा एवं भोला था। दैव का प्रकोप-माँ-बाप बचपन में ही चल बसे। वह बालक अनाथ हो गया। भूख-प्यास से परेशान वह इधर-उधर भटकने लगा। अपमान से दिया गया अन्न और तिरस्कार से दिया गया जल उसकी भूख-प्यास बुझा देता था। पर कभी-कभी जब और अपमान सहने की हिम्मत न पड़ती तो वह भूखा ही सो जाता।

उस अनाथ बालक का बचपन ऐसे ही बीतता रहा। एक दिन उस गाँव में एक सन्त आये। सन्त के आस-पास गाँव के लोगों की भारी भीड़ इकट्ठी हो गई। बाबा की

भव्य देह, शुभ्रकेश, ज्योति बिखेरती आँखें और आशीर्वाद सुनाते होंठ जब उस बालक ने देखा तो देखता ही रह गया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या कहे और कैसे कहे ? वह जब बाबा के पास जाने के लिये सोचा तो किसी ने उसे जोर का धक्का दे दिया। पर बाबा ने उसे अपने बलिष्ठ हाथों से संभाल लिया। वह बालक डर के बारे बाबा की गोद में चिपट गया। भीड़ जब बाबा के पास से विदा हुई तब उसका सिर सहलाते हुये बाबा बोले–बेटा! इस गाँव में मैं केवल तुम्हारे लिये ही आया हूँ।

उसका भी कोई अपना है, यह उसके लिये बड़े अचरज की बात थी। बाबा ने उसे प्यार से मंत्र–दीक्षा दी और बोले–बेटा! तुम बिना परेशानी अनुभव किये इसी गाँव में रहकर सबकी सेवा किया करो। उस बालक ने कहा–बाबा! इस गाँव वाले तो मुझे बहुत सताते हैं। उसकी बात सुनकर बाबा ने अपनी आँखें शून्य में टिका दी और कहीं आकाश में खो गये। कुछ सोचते हुये उनकी आँखों से आँसू की धारा बह निकली। थोड़ी देर बाद बाबा बोले–बेटा! गाँव वाले तुम्हें चाहे जितना भी सतायें, उसे प्रसन्नता पूर्वक सहन करो। इन सबके उत्पीड़न को प्रसन्नता पूर्वक सहते हुए इनकी सेवा करो। यही तुम्हारा साधनापथ है। मानोगे मेरी बात, कर सकोगे ऐसा।

पन्द्रह–सोलह साल का बालक बाबा की बात सुनकर चुप हो गया। पर, मना कैसे करता, जिन्दगी में पहली बार तो किसी ने उससे प्रेम से बात की है। उसने हामी भर दी। इसके बाद बाबा उस गाँव से कहीं अन्यत्र चले गये। गुरुदेव का स्मरण करते हुए, गाँव वालों के सारे तिरस्कार एवं उत्पीड़न सहकर वह बालक सबकी सेवा में लग गया। लोग जितना अधिक अपमानित करते उसे गुरुदेव उतने ही ज्यादा याद आते। कभी–कभी विह्वल होकर वह गुरुदेव को पुकारने लगता। रात में जब वह सो जाता तो सपने में भी बाबा उसके सिरहाने बैठे नजर आते। धीरे–धीरे वह युवा हो गया अब तो सोते–जागते उसका मन अपने प्यारे गुरुदेव में विलीन रहने लगा।

मंत्र–साधना एवं लोगों की निःस्वार्थ सेवा से उस बालक के ऊपर गुरु–कृपा की वर्षा होने लगी। इसका प्रभाव यह हुआ कि धीरे–धीरे गाँव वाले उसे अपमानित करना बन्द कर दिये। उसका मन अब गुरुदेव का हो चुका था। गुरुदेव के स्मरण से ही उसकी सुबह होती और उन्हीं के स्मरण से उसकी पलकें मुँदती।

एक रात जब वह बालक सो रहा था तभी अचानक उसे आभास हुआ कि मूलाधार से एक दिव्य प्रकाश उठा और धीरे–धीरे उसके सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हो

गया। उसका मन बिल्कुल स्थिर और शान्त हो गया। उसके मन के ज्ञान–कपट खुल गये। इतने दिनों में चौबीस साल का अन्तराल हो चुका था। एक दिन उसके गुरुदेव पुनः उसके पास आये और बोले–बेटा! तुम्हारी साधना सफल हो गई। अब तुम सिद्ध हो गये हो। वह बालक विह्वल होकर उनके पाँव पकड़ लिये और बोला–बाबा! मैं तो आपके इन चरणों का दास हूँ। मैंने तो जप, तप, ध्यान, साधना कुछ भी नहीं किया तो फिर मैं सिद्ध कैसे हो सकता हूँ। मैं तो सिर्फ वही करता रहा, मंत्र–दीक्षा के समय जैसा आपने आदेश दिया था। बाबा हँसते हुये बोले–बेटा! गुरु के कहे हुए को जो अक्षरशः कर लेता है, वह शुद्ध, बुद्ध व मुक्त हो जाता है। इसके विपरीत जो गुरु का विरोध करता है वह दुर्गति को प्राप्त होता है।

मेरे भाई–बहन! दीक्षा के समय हमारे सद्गुरुदेव भगवान ने जो आज्ञा दी है, उसका अक्षरशः पालन करके हम अपने में भी वैसा ही परिवर्तन ला सकते हैं जैसा परिवर्तन उस बालक में हुआ। आइए, गुरुदेव भगवान से प्रार्थना करें कि हे गुरुदेव! ऐसी कृपा करें कि–

''विश्वास हो ये मन में, तुम साथ ही हो मेरे।
तेरे ध्यान में सोऊँ मैं, सपनों में रहो मेरे।''

सादर जयगुरुदेव।

गुरुदेव भगवान का एक अकिंचन बालक।

स्पर्शान् कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तर चारिणौ।।५।२७।।

हे अर्जुन! बाह्य विषयों का चिन्तन न करते हुये तथा नेत्रों (दृष्टि) को भ्रू मध्य में स्थिर करते हुये नासिका के भीतर चलने वाले प्राण और अपान को सम करते हुये अर्थात् क्षीण करते हुये (ध्यान करें)।

योग स्वस्थ जीवन की कला और विज्ञान है

—दिनेश चन्द्र शर्मा

योग मात्र व्यायाम नहीं है। यह स्वस्थ जीवन की कला एवं विज्ञान है। योग एक आध्यात्मिक अनुशासन एवं अत्यन्त सूक्ष्म विज्ञान पर आधारित ज्ञान है जो मन और शरीर के बीच सामंजस्य का कार्य करता है। यौगिक ग्रन्थों के अनुसार योग का अभ्यास व्यक्तिगत चेतनता को सार्वभौमिक चेतनता के साथ एकाकार कर देता है। इसके माध्यम से मनुष्य शरीर एवं मन के बीच सामंजस्य स्थापित कर आत्म साक्षात्कार को प्राप्त करता है। नियमित योग अभ्यास से सभी त्रिविध प्रकार के दुःखों से निवृत्ति को प्राप्त कर साधक स्वास्थ्य, प्रसन्नता और सामंजस्य का अनुभव प्राप्त कर सकता है।

गुरुदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपने व्याख्यानों में कहा करते थे कि योग के पवित्र मार्ग का अवलम्ब लेने वाले प्रत्येक साधक को यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि दुखों की अत्यन्त निवृत्ति का परम साधन योग ही है। इससे ही साधक अपने नित्य स्वरूप एवं परम कल्याण को प्राप्त हुआ करता है।

योग विद्या का उद्‌भव हजारों वर्ष प्राचीन है। श्रुति परम्परा के अनुसार भगवान शिव योग विद्या के प्रथम आदि गुरु और आदि योगी हैं। हजारों वर्षों पूर्व आदि योगी भगवान शिव ने योग का ज्ञान पौराणिक सप्त ऋषियों को दिया था। इन ऋषियों ने योग विद्या का प्रसार संसार में किया।

वैदिक एवं उपनिषद परम्परा, शैव, वैष्णव, व तान्त्रिक परम्परा, भारतीय दर्शन, रामायण, गीता, महाभारत, बौद्ध एवं जैन परम्पराओं में और विश्व की लोक विरासत में भी योग मिलता है। सिन्धु घाटी और सरस्वती घाटी की सभ्यताओं में योग साधना करती अनेक आकृतियों, मुहरों और जीवाश्म अवशेष इस बात का प्रमाण हैं कि प्राचीन भारत में योग का अस्तित्व था।

योग का अभ्यास पूर्व वैदिक काल में भी किया जाता था। महर्षि पतंजलि जी ने उस समय के प्रचलित प्राचीन योग अभ्यासों को व्यवस्थित एवं वर्गीकृत किया और इस ज्ञान की ''पातंजल योग सूत्र'' ग्रन्थ के रूप में मानव कल्याण हेतु रचना की। पतंजलि

के बाद भी अनेक ऋषियों एवं योग के आचार्यों ने योग अभ्यासों और यौगिक साहित्य के माध्यम से इसके विकास में महान योगदान दिया।

परन्तु समय के प्रभाव से योग विद्या धीरे-धीरे लुप्त प्राय होती गई। ऐसे समय में योगावतार प्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने अवतरित होकर योग विद्या के गूढ़ ज्ञान का पुनः प्रसार किया और योग का दिव्य सन्देश जगत को दिया कि योग ही दिक और अविनाशी जीवन है। योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने लुप्त योग विद्या के पुनरूद्धार के लिये योग साधन आश्रमों की स्थापना कर योग का प्रकाश फैलाया। गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने इसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुये देश में व्यापक भ्रमण कर योग विद्या का प्रसार किया और साधकों को दिव्य अनुभव भी हुए।

योग प्राचीन काल से लेकर आज तक सम्पूर्ण विश्व में फैला है। योग दिन प्रतिदिन विकसित और समृद्ध होता जा रहा है। आज सभी को योग अभ्यास से व्याधियों-बीमारियों की रोकथाम, देखभाल एवं स्वास्थ्य लाभ मिलने और आध्यात्मिक पथ पर भी सफल होने का दृढ़ विश्वास है। योग व्यक्ति के शरीर, मन, भावना और ऊर्जा के स्तर पर कार्य करता है।

योग अभ्यास समर्थ गुरु/अनुभवी शिक्षक की देखरेख में ही करना चाहिए। योग की सभी प्राचीन व्याख्याओं में भी इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि समर्थ गुरु के मार्ग दर्शन में योग अभ्यास करना चाहिए। समर्थ गुरुदेव ही साधक की योग्यता और आवश्यकता के अनुसार सम्यक् मार्ग दर्शन एवं योग सिद्धान्तों का सही संयोजन करा सकते हैं। साधक को गुरुदेव की शरण में जाकर गुरु उपदेश के अनुसार अपनी उच्चतम प्रगति के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

योग की महत्ता को आज पूरा विश्व समझ रहा है। सम्पूर्ण विश्व में 21 जून को हर वर्ष अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में श्रद्धा के साथ उत्साहपूर्वक मनाया जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र महासभा में 11 दिसम्बर 2014 को सर्व सम्मति से, हर वर्ष 21 जून को 'अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस' मनाने का संकल्प, अनुमोदित हुआ। अपने संकल्प में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने स्वीकार किया कि योग स्वास्थ्य और कल्याण के लिए पूर्णता वादी दृष्टिकोण प्रदान करता है। योग विश्व की जनसख्या के स्वास्थ्य के लिये और उनके लाभ के लिए विस्तृत रूप से कार्य करेगा। योग जीवन के सभी पहलुओं में सामंजस्य भी बैठाता है और इसीलिए बीमारियों की रोकथाम, स्वास्थ्य प्रोत्साहन और जीवन शैली सम्बन्धी कई विकारों के प्रबन्धन के लिए जाना जाता है।

योग के आचार्यों ने अष्टांग योग अर्थात् योग के सभी आठ अंगों पर ध्यान देने पर बल दिया है। योग साधनाओं में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि, बन्ध एवं मुद्रा, षटकर्म, युक्त आहार, युक्त कर्म, मंत्र जप आदि साधनाओं का अभ्यास नियमित करने के लिए प्रेरित किया जाता है।

जो लोग योग सिद्धान्तों को समझ करके गुरु के बताये मार्ग के अनुसार शास्त्र विधि से योगाभ्यास करते हैं उनके परम कल्याण में कोई शंका नहीं रहती है। योग इतना व्यापक और महत्वशाली है कि सभी सिद्धान्त वादियों ने इसे अपनाया है।

योग साधना में यम नियमों की साधना को आवश्यक बताया गया है। यम प्रतिरोधक एवं नियम अनुपालनी है। आसन का अभ्यास शरीर एवं मन में स्थायित्व लेने में सक्षम है। शरीर को निरोग, हल्का, फुर्तीला, ओजस्वी तेजस्वी एवं वीर्य को शरीर में व्यापक बनाने के लिए योगासन बहुत उपयोगी है। योगासन जहाँ शरीर की आरोग्यता को बढ़ाते हैं वहीं वे प्राणायाम की साधना में भी सहायक होते हैं। अष्टांग योग में प्राणायाम से पहले आसन का निर्देश है।

प्राणायाम श्वास प्रश्वास प्रक्रिया का सुव्यवस्थित एवं नियमित अभ्यास है। श्वास को शरीर के अन्दर लेना पूरक कहा जाता है। श्वास को शरीर के अन्दर रोकने की अवस्था कुम्भक और श्वास को शरीर से बाहर छोड़ना रेचक कहा जाता है। आर्य ग्रन्थों में आचार्यों ने प्राणायाम की विविध विधियों का वर्णन किया है। प्राणायाम के अभ्यासी साधकों को चाहिए कि वे विधि विधानपूर्वक प्राणायाम का अभ्यास करें।

हठयोग के आचार्यों ने प्राणायाम के आठ विशेष भेद बताये हैं–

सूर्य भेदन मुज्जायी सीत्कारी शीतली यथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्छा प्लाविनीत्यष्ट कुम्भकाः।।

सूर्य भेदन उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और प्लाविनी ये आठ प्रकार के कुम्भक (प्राणायाम) कहे गये हैं। साधक को विधिपूर्वक इनका अभ्यास करना चाहिए। यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि अनुभवी गुरु की देखरेख में ही ये क्रियाएँ करनी चाहिए, केवल पुस्तकों में पढ़कर इन क्रियाओं को आरम्भ कर देने से हानि भी हो सकती है।

योगियों ने प्राणायाम को महान तप माना है। साधक–योगी युक्त आहार–विहार होकर अपनी प्राणवायु पर नियन्त्रण रखता है तो अजर अमर हो जाता है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में स्पष्ट कहा है कि–

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्म सु
युक्त स्वप्नाव बोधस्य योगी भवति दुःखहा।।
नात्यश्न तस्तु योगोऽस्ति न चैकान्त मनश्नातः।
न चाति स्वप्न शीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।।

जिस व्यक्ति का आहार विहार युक्त है। हर चेष्टा संयमित है। जिसका सोना व जागना भी संयमित है उसकी योग साधना सभी प्रकार के दुःख द्वन्द्वों को दूर करने वाली होती है। युक्ताहार स्वस्थ जीवन के लिए पर्याप्त, सुव्यवस्थित एवं नियमित भोजन का समर्थन करता है।

जो मनुष्य बहुत अधिक खाता है या बिल्कुल नहीं खाता, बहुत अधिक सोता है या सोता ही नहीं ऐसा व्यक्ति योग साधना में सफलता नहीं पा सकता। इसलिए साधक का जीवन संयमित होना चाहिए। जो साधक अपनी प्रत्येक दिनचर्या नियन्त्रण कर लेता है वह योग साधना के मार्ग में सुखी बन जाता है।

षटकर्म शरीर एवं मन शोधन का सुव्यवस्थित एवं नियमित अभ्यास है जो शरीर में एकत्रित हुए (टाक्सीन गैस, इन्फैक्शन, आदि) विष को हटाने में सहायता प्रदान करता है।

प्राणायाम के अभ्यासी साधकों को त्रिबन्ध तीनोंबन्धों को लगाने की विधि का ज्ञान होना चाहिए। ''हठयोग प्रदीपिका ग्रन्थ के रचयिता योगी आत्माराम ने तीनों बन्धों–(मूल बन्ध, उड्डीयान बन्ध और जलन्धर बन्ध) का उत्कृष्टता के साथ वर्णन किया है। जो साधक प्राणायाम करते समय तीनों बन्धों को विधिपूर्वक लगाते हैं उनको प्राणायाम सिद्ध हो जाता है।

प्रत्याहार के अभ्यास से व्यक्ति स्वयं की इन्द्रियों के माध्यम से सांसारिक विषय का त्याग कर अपने मन तथा चैतन्य केन्द्र के एकीकरण का प्रयास करता है। धारणा का अभ्यास मनोयोग के व्यापक आधार क्षेत्र के एकीकरण का प्रयास करता है। यह एकीकरण बाद में ध्यान में परिवर्तित हो जाता है। इसी ध्यान में चिन्तन एवं एकीकरण रहने पर कुछ समय पश्चात् समाधि की अवस्था में परिवर्तित होता है।

ध्यान का अभ्यास योग साधना पद्यति का सबसे महत्त्वपूर्ण घटक माना गया है जो व्यक्ति को आत्मबोध एवं श्रेष्ठता की ओर ले जाता है। यह साधक को नकारात्मक भावनाओं से दूर रखता है। भय, क्रोध, अवसाद, चिन्ता दूर करता है और सकारात्मक भावनाएँ विकसित करने में सहायता करता है। मस्तिष्क को शान्त रखता है। एकाग्रता,

स्मृति, विचारों की स्पष्टता और मनोबल को बढ़ाता है। पूरे शरीर और मस्तिष्क को पर्याप्त आराम देते हुए उनका कायाकल्प करता है।

साधक को नियमितता और निरन्तरता के साथ योग अभ्यास करना चाहिए। अपने गुरु मन्त्र का अधिकाधिक जाप करें और इष्ट देव का ध्यान करें। ऐसा करने से साधक शीघ्र ही अनुभव करने लगेगा कि उसे पूर्ण सुख की प्राप्ति हो रही है।

योगी लोग शिव को अपने अन्तःकरण में ही देखते हैं।

शिव धर्मोत्तर में आया है कि योगी लोग शिव को आत्मा में ही देखते हैं पढ़िये निम्न श्लोक–

शिवमात्मनि पश्यन्ति, प्रतिमासु न योगिनः
आत्मस्थं यः परित्यज्य, वहिस्थं भजेत शिवम्
हस्तस्थ पिण्डमुत्सृज्य, लिह्यात्कर्पूरात्मनः
सर्वत्रावस्थितं शान्तं न पश्यन्तीहं शंकरम्

अर्थात्

"योगिजन शिव का आत्मा में ही दर्शन करते हैं। प्रतिमाओं में नहीं। जो पुरुष आत्मा में स्थित शिव का परित्याग कर बाह्य शिव का पूजन करता है वह मानो हाथ का ग्रास गिरा कर केवल अपनी हथेली चाटता है। जिस प्रकार अन्धा आदमी उदय हुए सूर्य को नहीं देख सकता उसी प्रकार ज्ञान नेत्रों से रहित होने के कारण लोग सर्वत्र विद्यमान शान्तस्वरूप शिव का दर्शन नहीं कर पाते। जो पुरुष सर्वगत शान्तमूर्ति शिव का दर्शन करता है, उसके तो अन्तःकरण में ही शिव विराजमान हैं। किन्तु जो आत्मस्थ शिव को नहीं देख सकते वे ही उन्हें तीर्थस्थान में खोजते हैं। जो पुरुष आत्मस्थ तीर्थ को त्यागकर बाह्य तीर्थादि में जाता है। वह मानो अपने हाथ का महारत्न गिराकर काँच ढूंढ़ता फिरता है।

''ॐ रामलाल प्रभवे नमः''

लीला धारी की लीलाएँ

—जगदीश राए बंसल ''अधम'' 9212434003 एवं 011—35699425

गताँक से आगे—

हमारे सद्गुरु देव भगवान, त्रय जग पावन महासिद्ध योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपनी दिव्य लेखनी से हमको अवगत कराते रहे हैं कि—मेरे सद्गुरु देव, अकारण दयालु प्रभु श्रीरामलाल जी महाराज की साधारण जनों के मध्य—आविर्भूति एवं स्वाभाविक कल्याणकारी कृपा लीलाओं का कुछ परिचय दे देना, विचारशील पाठकगणों के प्रति आवश्यक हो जाता है।

सिद्ध शिरोमणि श्री प्रभु जी ने जब अपनी दिव्य दृष्टि से भूलोक पर दृष्टिपात किया तो देखा कि ऋषि—मुनियों की ये श्रद्धा शून्य सन्ताने भोगवाद में फंसी हुई हैं और ईर्ष्या आदि क्लेशकारी रोगों से ग्रसित हैं......। इसी प्रकार के अधोन्मुख—युग के उद्धार प्रकरण पर ही योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र जी महाराज ने स्वय श्री मुख से श्रीमद्भगवत गीता में उद्घोष किया है कि—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

विश्वात्मा भगवान वासुदेव की विमल वचनावली के अनुसार नास्तिकता—निशाचरी का नाश करके, कल्याण निकेतन आनन्द कन्द श्रीकृष्ण चन्द्र भगवान जी के दिव्य दर्शनों की उज्ज्वल उत्कण्ठाओं को उभार कर शुद्ध संकल्प मात्र से ही योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज नैपाल हिमालय के उतुंग शिखरों की ओर से अवतरित हुए और सवाई ग्राम को सर्वप्रिय मान कर 'कुटियासन' स्वीकार किया और भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र जी महाराज के सदृश ही लीलाएँ की। आनन्दकन्द महाप्रभु श्रीराम लाल जी महाराज की कृपा धारा सदैव दुखी प्राणियों एवं अन्य चलते फिरते व्यक्तियों पर भी चमत्कारिक ढंग से चलती रही हैं। अतः जो नर—नारी, बालक, वृद्ध, विक्षित तथा योगी ध्यानी श्रद्धायुक्त स्वाध्याय करेंगे, उनके ऊपर श्री कृपा सागर प्रभु श्रीराम लाल जी महाराज की अति शीघ्र कृपादृष्टि होगी और उन्हें ध्यानावस्था का भी शीघ्र लाभ प्राप्त होगा।

लीलाऐं

श्री प्रभु जी द्वारा डॉ. राम गोपाल को योगदीक्षा

श्री प्रभु जी ने डॉ. रामगोपाल को प्रतिज्ञायें करवा कर योग दीक्षा प्रदान की और आशीर्वाद दिया–''बेटा! अब तुम संसार में लाखों जीवों के कल्याण का कारण बनोगे। तुम्हारे रोम रोम में भगवान श्रीकृष्ण का प्रेम व्याप्त हो जाएगा। तुम्हारे हरि कीर्तन में शक्ति का संचार होगा। थोड़े समय में ही देश विदेश के लाखों प्राणी इस संकीर्तन में डुबकी लगा कर भगवत चरण अनुरागी बन कृतार्थ होंगे।'' डॉ. रामगोपाल अब गोपालानन्द हो गए। श्री प्रभु जी उन्हें बीच–बीच में एकान्त वास के लिए वनों में भेज देते थे। ब्र. गोपालानन्द जी की ध्यान स्थिति इतनी ऊँची बढ़ी कि वे हर समय समाधि में लीन रहने लगे।

ब्र. गोपालानन्द जी को भगवान सदाशिव के दर्शन

एक दिन ध्यान में श्री गोपालानन्द जी ने श्री प्रभु जी से प्रार्थना की कि ''प्रभो! कृपा कर मुझे अपने गुरु जी महाराज के दर्शन कराइए।'' बस, फिर क्या था–सहसा नेपालवासी महाप्रभु सदाशिव भगवान के दर्शन होने लगे। कोटि सूर्य महान प्रकाश था। दृष्टि स्थिर होनी कठिन हो गई। शरीर में कम्पन होने लगा। तब ब्र. जी ने प्रार्थना की कि हे दीनबन्धु! मैं आपके तेज को कैसे सहन कर सकता हूँ।'' पुनः वाणी हुई कि मेरी शक्ति इसके द्वारा संसार में, जिज्ञासु समुदाय को ज्ञान मार्ग में प्रवृत्त कराएगी जोकि ज्ञान–योग द्वारा प्राप्त होता है।

गुरू नानक देव जी के दर्शन

एक दिन ब्रह्मचारी जी के मन में संकल्प हुआ कि मैं गुरु नानाक देव के दर्शन करूँ। आँखें बन्द करके ध्यान–मग्न हो गए तो देखा कि गुरु नानक देव जी एक शोभायमान बगीचे में बैठे हैं। ब्रह्मचारी जी ने प्रणाम कर प्रार्थना की कि ''महाराज! मैं एक साधन चाहता हूँ कि मेरे शरीर अतिशय बल बढ़ जाए।'' गुरु नानक देव जी ने अपना आशीर्वाद देते हुए कहा–'जिनकी कृपा से तुम मेरे पास आ सके हो, ये साधन तुम उन श्री प्रभु जी से सीखो जो सब प्रकार से परिपूर्ण परात्पर शुद्ध ब्रह्म हैं और सृष्टि के आदि से अन्त तक रहने वाले पूर्ण सिद्ध हैं।'' किन्तु जब ब्रह्मचारी जी ने बहुत आग्रह किया तो गुरू नानक देव जी ने बलात्कर्षक प्राणायाम की एक विधि बतला दी। उन्होंने यह भी बतलाया कि इस साधना को तुम अपने गुरु देव जी की आज्ञा से ही करना अन्यथा सफल नहीं हो सकोगे।

अब ब्रह्मचारी जी समाधि से उठे और आनन्द कन्द परम कल्याण धन श्री प्रभु जी की बिना आज्ञा के ही बलाकर्षक प्राणायाम कर डाला। परिणामत: उस साधन के करने से उसके शरीर में अद्‌भुत बल का संचार हुआ, किन्तु वह उस बल को संभाल न सके। उनका शरीर फटने लगा। दुखी होकर, पुन: ध्यान में गुरु नानक देव की शरण ली। गुरुनानक देव ने कहा–''हमने तुमसे पहले ही कहा था कि श्री प्रभु जी की आज्ञा से ही यह साधन करना। अब तुम उन्हीं कृपा निधि की शरण में जाकर प्रार्थना करो।'' श्री ब्रह्मचारी जी समाधि से उठे और श्री करुणार्णव प्रभु जी की शरण में जाकर प्रार्थना की और अपनी भूल पर पश्चाताप किया। तब श्री कृपा नाथ जी ने मक्खन और कपूर मिला कर उसके शरीर पर मालिश कराई, फलस्वरूप उसका कुपित वायु शान्त हो गया...........।

जगदम्बा कालिका के दर्शन

श्री ब्रह्मचारी जी को कलकत्ते में आयुर्वेद परीक्षा की तैयारी के समय उत्कण्ठा बनी कि जगदम्बा कालिका माँ के स्थूल दर्शन हों और अभीष्ट सिद्धि का आशीर्वाद प्राप्त करूँ। किन्तु 18 दिन की कठिन तपश्चर्या और व्रत के बाद भी दर्शन लाभ नहीं हुआ। उन्होंने मन में विचारा कि यह सब भ्रान्ति है, ऐसे दर्शन कहाँ होता है। किन्तु जब समय आया तो ब्रह्मचारी जी ने श्री प्रभु जी के चरण कमलों का प्रसाद प्राप्त किया। आज वही महामाया कालिका ब्रह्मचारी जी के सामने आ कर खड़ी हो गई। उस समय ब्र. जी ऋषिकेश से 9 मील ऊपर ब्रह्मपुरी के जंगल में समाधिस्थ थे। उनकी आँखे खुली, अकस्मात सिंह वाहिनी जगदम्बा को सामने देख कर उन्होंने अत्यन्त विनय से प्रणाम किया। जगत जननी माँ ने प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा। श्री ब्र. जी ने हाथ जोड़कर विनय किया कि हे जगदम्बा! वर माँगने से पूर्व मैं यह जानना चाहता हूँ कि ''उस समय घोर अनशन व्रत करके भी मुझे आपके दर्शन क्यों नहीं प्राप्त हुए और आज मेरे मन में कोई विचार भी नहीं था जो आपके दर्शन कर रहा हूँ।'' माता ने प्रसन्न हो कर कहा–बेटा, उस समय तुम्हारा अन्त:करण शुद्ध नहीं था। मैं तुम्हारे पास रहती थी किन्तु तुम मुझे देख नहीं सकते थे। अब सद्‌गुरु की पूर्ण कृपा से तुम्हें मेरे दर्शन हो रहे हैं। तुम जो माँगना चाहो मांग सकते हो।''

ब्र. जी ने कहा–''जगदम्बे! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मुझे योग के कल्याणकारी दर्शन कराने वाले इन्हीं सद्‌गुरु देव की पूर्ण भक्ति दे दो.........।'' माता ने खुश होकर कहा–''बेटा, यह वस्तु तो तुम्हें उनकी कृपा से ही प्राप्त होगी। कोई और

वर माँगो। घर, पुत्र, स्त्री, मान–सम्मान.... सब तुम्हें दे दूँगी।'' ब्रह्मचारी जी ने कहा–माता आपकी कृपा सदा बनी रहे। माँ जगदम्बा तेजी से चली गई। ब्र. जी ध्यान से उठ कर कृपामय श्री प्रभु जी के चरण कमलों में आ गए और सम्पूर्ण घटना श्री प्रभु के चरण कमलों में निवेदन कर दी।

ब्र. जी को ध्यान में पूर्वजन्म ज्ञान

एक बार प्रातः ऋषिकेश आश्रम में कुए पर ब्र. गोपालानन्द जी, बरकत राम व उनके भाई स्नान कर रहे थे। वहाँ काई अधिक थी, उससे ब्र. जी का पैर फिसल गया और साबुन की खुली डिब्बी से हाथ का अंगूठा छिल गया उससे खून बहने लगा। हथेली की खाल उतर गई। श्री प्रभु जी ने कहा ये क्या हो गया है ? ब्र. जी ने संकोच से सब कह दिया। श्री प्रभु जी ने हंसकर कहा–''इसके दबाने (मेरे पैर दबाने) से मेरे टाँगों में दर्द होने लगा था। आज तो आराम मिलेगा।'' इसके बाद भाई श्री मुलखराज जी ने भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति का भजन गाया। फिर श्री प्रभु जी ने गोपालानन्द को ध्यान मग्न कर दिया। श्री प्रभु जी भगवान कृष्ण के अनेक रूपों से रासलीला दिखला कर मन हरने लगे। श्री ब्र. जी ने प्रश्न किया कि ''प्रभु जी आज यह चोट क्यों लगी। आप तो कहते थे कि हम अपने बच्चों को कोई कष्ट नहीं देते। मुझे इसका कोई कष्ट नहीं, किन्तु आज मैं चरण सेवा नहीं कर सकता।'' यह सुन कर श्री प्रभु जी ने ब्र. जी को ध्यान में ही मथुरा में गौघाट के पास गली में एक मकान दिखलाया कि पिछले जन्म में तू यहाँ रहता था। तेरा नाम रामनारायण था। तू गौड़ ब्राह्मण था। घर में पत्नी और एक गाय थी। तूने निर्जला एकादशी का व्रत किया और तू ''रनछोर'' गाँव में एकादशी महात्म की कथा सुनाने गया और अपनी स्त्री से कह गया कि गौ को चारा काट कर दे देना। मगर तेरी स्त्री एक जन्मोत्सव देखने चली गई। तू जब ग्राम से लौटा तो स्त्री को भला बुरा कहा और कुट्टी काटने लगा। वह रोकने लगी तब गडाँसा उसके हाथ पर पड़ा और उसका हाथ कट कर पास के कुएँ में गिर गया।

तू उसको तड़पती छोड़कर भय और क्रोध से भाग गया। तेरी स्त्री अपनी माता के घर चली गई और हाथ की तकलीफ से उसकी मृत्यु हो गई। इसके दण्ड से आज तेरे हाथ को कट कर मृत्यु को प्राप्त होना था मगर इतने भर से भुगता दिया, क्योंकि तू प्रभु जी शरण में है। श्री प्रभु जी की कृपा का अनुभव कर श्री गोपालानन्द जी ध्यान से उठ गए और करुणानाथ के श्री चरणों से लिपट गए।

क्रमशः

श्री गुरुदेव भगवान का काशी प्रवास

दासानुदास–मिथिलेश

आनन्दकन्द श्री प्रभु जी की करुणा कृपा से विगत 27 से लेकर 1 नवंबर तक श्री गुरुदेव भगवान का काशी प्रवास रहा। वाराणसी स्थित श्री सिद्ध योग आश्रम टोडरपुर में श्री गुरुदेव भगवान ने प्रवचन दिया एवं भक्तों तथा अपने बच्चों पर अपनी अपार करुणा कृपा की वर्षा की। परम्पराओं का अनुगमन करते हुए यहाँ पर श्री मंगला आरती, ध्यानाभ्यास, आसन अभ्यास एवं गीता पाठ तथा प्रवचन और स्वयं कालीन योग पर व्याख्यान रहा।

ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति

ब्रह्मदारण्यकोपनिशद के इस वचन पर पूर्ण विश्वास रखते हुए हमें सर्वप्रथम अपने मन में इस बात का निश्चय कर लेना चाहिए कि ब्रह्म अर्थात् परमात्मा को जान लेने वाला उसी के स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। अतः भेददृष्टि को छोड़कर श्री प्रभु जी एवं गुरुदेव में एक ही दृष्टि रखनी चाहिए। हम जैसे सामान्य मनुष्य के द्वारा उन पर योगीराज की लीलाओं को जान पाना संभव नहीं है क्योंकि हमारी आँखों में वह गुण नहीं है जिससे हम उनके विराट स्वरूप को देख सकें। श्रीमद्भगवत् गीता के 11वें अध्याय में बड़ा ही रोचक प्रसंग आता है जब अर्जुन भगवान से कहते हैं–**द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम** अर्थात् हे प्रभु मैं आपके उस परम दिव्य निजरूप को देखना चाहता हूँ जिसमें आपके सभी ऐश्वर्य समाहित हैं। तब भगवान ने जो उत्तर दिया वह हमारे लिये अत्यन्त ही उपयोगी है। भगवान ने कहा **न तु माम् शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुसा** अर्थात् तुम मुझे अपने इन आँखों से नहीं देख सकते। मेरे उस ऐश्वर्यपूर्ण स्वरूप को देखने के लिए दिव्य नेत्रों की आवश्यकता होती है। उन परम योगीराज के द्वारा हम जैसे संसारी जीवों को वही योग रूपी शक्ति प्रदान की गई है जिसके द्वारा हम अपने आप से दिव्य चक्षु को खोल सकें तथा उन महापुरुष का साक्षात्कार कर सकें।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी अर्थात् जीव ईश्वर का ही अंश है तथा उसका कभी नाश नहीं होने वाला है: परन्तु ईश्वर तथा जीव में मुख्य अंतर को स्पष्ट करते हुए गुरुदेव भगवान के द्वारा योग दर्शन का एक सूत्र रखा गया है–**क्लेशकर्मविपाकासयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः** अर्थात् किसी जीव के अन्दर अविद्यादि क्लेश, कुशलाकुशल कर्म,

कर्मों का फल एवं उन फलों के अनुसार हमारे संस्कार बनते हैं, परन्तु उपर्युक्त चारों क्रियाएँ ईश्वर में अनादि काल से कभी नहीं थीं। अतः जब मनुष्य अपने इन्हीं गुणों को समाप्त कर देता है तब उस जीव का ईश्वर के साथ मिलन हो जाता है फिर आवागमन रूपी चक्र से मुक्ति हो जाती है।

योग की गहन गुत्थियों को बोधगम्य में बनाते हुए श्री गुरुदेव भगवान ने पतंजलि जी के द्वारा उल्लिखित **जन्मोषधिमंत्रतपः समाधिजाः सिद्धयः** सूत्र को व्याख्यायित करते हुए बताया कि सिद्धियाँ पाँच प्रकार की होती हैं–(1) **जन्म से (2) औषधि के प्रयोग से (3) मंत्र के प्रभाव से (4) तप के प्रभाव से एवं (5) समाधिज।**

समस्त सिद्धियाँ का निदर्शन श्री प्रभु जी के अन्दर हमें स्पष्ट रूप से दिखाई देता है क्योंकि वह अनादि सिद्धयोगी हैं। गुरुदेव भगवान ने इस प्रसंग को और अधिक स्पष्ट करते हुए बताया कि योगी अभ्यास करते हुए दूर–श्रवण, दूर–दर्शन एवं दूर–गमन जैसी अनेकों सिद्धियों को अपने भीतर अनुभव करता है।

योग प्रचारक के दौरान श्री गुरुदेव भगवान का आगमन कछवां में भी हुआ जहाँ पर भक्तों के अनुग्रह पर कछवां में आश्रम निर्माण के लिए सहर्ष निष्क्रय भूमि देने के प्रस्ताव को गुरुदेव ने स्वीकार किया तथा भूमि परीक्षण के लिये वहाँ गये। विगत दो वर्षों से वहाँ पर श्री प्रभुजी की विशाल योगशोभा–यात्रा निकाली जा रही है। जिसमें भक्तों का उत्साह एवं मनोबल प्रभुकृपा से उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। मेरा मानना है कि यदि यह आश्रम मूर्तरूप लेता है तो पूरे क्षेत्र को इसका लाभ मिलेगा तथा जनसामान्य को योगमार्ग का अनुभव प्राप्त होगा।

हम जैसे साधकों को चाहिए कि हम अपनी साधना पर ध्यान दें, अपने प्रत्येक श्वास–प्रश्वास को श्री गुरुचरणों में समर्पित करें एवं अपने आध्यात्मिक मार्ग को प्रशस्त करते रहें। मनुस्मृति में उल्लिखित है कि **गुरुशुश्रूषयात्वेव ब्रह्मलोके महीयते** अर्थात् गुरु की सेवा करने वाला ब्रह्मलोक में स्थान प्राप्त करता है। अतः हमें ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों में कभी भी भेद दृष्टि नहीं रखनी चाहिए अपितु मनसा वाचा कर्मणा उनका अनुकरण एवं अनुसरण करना चाहिए ताकि इस भवसागर से उतरकर पार हो सकें।

अखिलकोटिब्रह्मांडनायक श्री गुरुदेव भगवान के चरणों में अपनी वाणी को समर्पित करते हुए बारम्बार दण्डवत् प्रणाम करता हूँ।

योगाभ्यासी श्री एकनाथ जी

श्री केशव जी उपाध्याय, वाराणसी

परम प्रभु श्री गुरुदेव भगवान की कृपा से प्रस्तुत लेख में एक ऐसे गृहस्थ योगाभ्यासी साधक का वर्णन करने का प्रयास किया जा रहा है, जिसने अपने पूज्य आराध्य गुरुदेव की कृपा से योग की वह उच्च स्थिति प्राप्त की, जिसे अर्जित करने के लिए बड़े-बड़े संत-महात्माओं और वैरागियों को अनेकानेक जंगलों में वर्षों तक धूल चाटनी पड़ती है। इन महात्मा एकनाथ का जीवन इस तथ्य का ज्वलन्त उदाहरण है, कि योग साधना के क्षेत्र में गृहस्थ जीवन, वैरागी महात्माओं के जीवन से बिल्कुल ही नीचे स्तर का नहीं है। साथ ही इन का जीवन इस बात का भी प्रत्यक्ष प्रमाण है कि सर्व समर्थ गुरुदेव की कृपा ही साधक की श्रेष्ठता का एकमात्र कारण है।

साधक एकनाथ जी का मत था कि यदि किसी प्राणी ने गृहस्थ आश्रम में निवास करते हुए सांसारिक भोगों और ऐश्वर्यों के प्रति अपना आकर्षण समाप्त कर लिया है, तो निश्चय ही वह उच्चकोटि का साधक है। श्री एकनाथ जी प्रायः कहा करते थे कि नाव तो पानी में चली है, पानी में चलती है, और भविष्य में भी पानी में ही चलेगी। ध्यान केवल एक बात का रखना है कि नाव के किसी छिद्र द्वारा नाव में पानी भर गया तो पानी पर चलने वाली नाव, पानी में ही डूब जावेगी। ठीक इसी प्रकार मानव शरीर रूपी नाव संसार सागर में चलने के लिए ही बनायी गई है।

इन महान योगाभ्यासी सन्त एकनाथ जी का ज म सम्वत् 1590 में, महाराष्ट्र प्रान्त के पैठण नगर में, श्री सूर्यनारायण जी एवं श्रीमती रुक्मिणी देवी की सन्तान के रूप में हुआ था। इनके माता पिता उच्च कोटि के वैष्णव भक्त थे। श्री एकनाथ जी का जन्म मूल-नक्षत्र में हुआ था, अतः अल्पायु में ही इनकी माता जी और इनके पिता जी परलोक सिधार गये। आप की दादी जी ने आप का लालन-पालन किया। इनके दादा जी के घर पर नित्य सायंकाल रामायण और श्री मद्भागवत् की कथा होती थी। इन कथाओं का प्रभाव इनके मानस पटल पर बड़ा ही गहरा पड़ा और शायद यही कारण था कि बचपन से ही आप कीर्तन-प्रेमी और ईश्वर भक्त बन गये थे। कीर्तन भजन गाते-गाते ये इतने मस्त हो जाते थे कि अपनी सुध-बुध खो देते थे। एकसमय यह किसी मन्दिर

में कीर्तन गाने गये, इनके साथ चार पाँच और बालक थे। कीर्तन करते–करते करीब आधी रात हो गयी और सभी साथ के बालक अपने घरों को चले गये। तब कीर्तन की मस्ती में, ये शान्त भाव से मन्दिर में ही ध्यानस्थ हो गये, रात के करीब चौथे पहर, इन्हें आकाश–वाणी सुनाई दी कि तुम्हें जनार्दन पन्त से दीक्षा ले लेनी चाहिए। वही तुम्हारे आध्यात्मिक गुरुदेव है। उसी समय आप मन्दिर से बाहर निकले एवं अपने गुरुदेव की खोज करना आरम्भ कर दी। चूँकि ईश्वर आज्ञा से गुरुदेव की तलाश कर रहे थे अतः गुरुदेव आप को मिल ही गये। इसके पश्चात् आपने अपने को गुरु सेवा में अर्पण कर दिया।

अपने आपको गुरु–चरणों में समर्पित करने के पश्चात् श्री एकनाथ जी ने गुरु–निर्दिष्ट मार्ग से अपनी साधना आरम्भ की। साधना काल में ही आप को गुरुदेव की कृपा से भगवान श्रीकृष्ण और भगवान दत्तात्रेय जी का स्थूल दर्शन लाभ हुआ। कुछ काल तक गुरुदेव के समीप रहकर साधना करने के पश्चात् गुरुदेव ने आपको अनुष्ठान करने शूलभंजन पर्वत पर भेज दिया। प्रत्यक्ष–दर्शियों के अनुसार, अनुष्ठान के समय जब यह ध्यान में बैठते थे, एक विषैला सर्प इनके शरीर से लिपट कर बराबर झूमता रहता था। अनुष्ठान की अवधि पूर्ण होने पर यह अपने गुरुदेव के पास गये। गुरुसेवा मे कुछ दिन व्यतीत करने के बाद गुरुदेव ने इन्हें तीर्थ–यात्रा करने की आज्ञाप्रदान की। इस आज्ञानुसार श्री एकनाथ जी का करीब बारह वर्षों से कुछ ज्यादा समय तीर्थ यात्रा में लग गया। तेरहवें वर्ष पुनः आप गुरु चरणों के पास पहुँच गये तथा गुरुसेवा करने लगे। अकस्मात् गुरुदेव ने आज्ञा दी, ''एकनाथ, अब तुम अपने घर को चले जाओ, और अपना विवाह करके गृहस्थ जीवन व्यतीत करो। हमारी शुभकामना सदैव तुम्हारे साथ रहेगी।'' पहले तो एकनाथ जी को अपने गुरुदेव के यह वाक्य बड़े ही अटपटे से लगे, परन्तु अपने प्रभु के आदेशानुसार आप घर आये एवं सुश्री गिरिजादेवी के साथ इनका विवाह–संस्कार सम्पन्न हुआ, गुरु कृपा कुछ ऐसी रही कि आपकी पत्नी श्रीमती गिरिजा देवी सुलक्षणा और सर्वगुण सम्पन्न निकली। कुछ विद्वानों का मत है कि यदि श्रीमती गिरिजादेवी जैसी महिला, श्री एकनाथ जी को सुलभ न होती तो शायद उनकी साधना अधूरी रह जाती। समय चक्र के साथ श्री एकनाथ जी के यहाँ तीन सन्तानें पैदा हुयीं। एक लड़का जिसका नाम था हरि और दो कन्यायें जिनके नाम हैं गंगा और गोदावरी। श्री एकनाथ जी बहुत ही सरल और शील युक्त महापुरुष थे। कुछ लोगों का

विचार तो यह है कि अपने पूरे जीवन काल में श्री एकनाथ जी को कभी भी क्रोध नहीं आया। उनकी सहनशीलता की कोई सीमा न थी ? इसका अनुमान निम्न घटनाक्रम से बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है।

प्रस्तुत प्रसंग आपके गाँव के करीब के दूसरे गाँव के एक गरीब ब्राह्मण से सम्बन्ध रखता है। गरीब ब्राह्मण ने अपने बालक का उपनयन संस्कार करने का निश्चय किया। इस संस्कार हेतु उसने दो सौ रुपयों की नितान्त आवश्यकता थी। कर्ज लेने के लिये उसने अनेक लक्ष्मी सम्पन्न लोगों से प्रार्थना की, परन्तु किसी ने उसे कर्ज नहीं दिया। अन्त में जब वह एक जमींदार के यहाँ गया, जो आसुरी वृत्ति का था, तो उसने कहा कि कर्ज की क्या बात है ? मैं तुम्हें दो सौ रुपया इनाम में दूँगा। तुम्हें केवल एक कार्य करना है और वह है श्री एकनाथ जी के अन्दर क्रोध उत्पन्न करना। चूँकि गरीब ब्राह्मण पैसे के लिये परेशान था अतः उसने श्री एकनाथ जी को क्रोधित करने का निश्चय कर लिया। दूसरे दिन अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रातः ही वह एकनाथ जी के निवास–स्थान पर पहुँच गया। जिस समय ब्राह्मण एकनाथ जी के यहाँ पहुँचा, उस समय एकनाथ जी आसन पर बैठकर पूजा कर रहे थे, ब्राह्मण उनकी जांघ पर बैठ गया। श्री एकनाथ जी ने बिना कुछ कहे अपनी पूजा जारी रखी।

पूजनोपरान्त जब एकनाथ जी की धर्म–पत्नी भोजन लेकर आयीं और थाली जमीन पर रखने के लिये झुकीं, उसने श्रीमती गिरिजा देवी के कन्धे पर चढ़ने का प्रयास किया। सुलक्षणा गिरिजादेवी ने कहा, कन्धे पर बैठ जाओ बेटा। मैं तुम्हें नीचे नहीं गिरने दूँगी।'' श्री एकनाथ की पत्नी का यह उत्तर सुनकर ब्राह्मण बहुत लज्जित हुआ और फूट–फूटकर रोने लगा। श्री एकनाथ जी को दया आ गयी, उन्होंने उसको समझाकर शान्त किया एवं रोने का कारण पूछा। ब्राह्मण ने सारा तथ्य एकनाथ जी को बता दिया। तथ्य को समझ लेने के बाद श्री एकनाथ जी ने मुस्कराते हुए कहा, ''अगर तुमने यह तथ्य मुझे पहले ही बता दिया होता, मैं अवश्य ही चिढ़कर क्रोध करता और तुम्हें रुपये मिल ही जाते।'' इसके पश्चात् श्री एकनाथ जी ने उस गरीब ब्राह्मण के लिये दो सौ रुपये का प्रबन्ध करा दिया।

श्री एकनाथ जी की दयालुता और योग–शक्ति युक्त एक सांसारिक घटना का विवरण इस प्रकार से है। अपनी दादी के संस्कार का पूर्ण उत्तरदायित्व श्री एकनाथ जी ने अपने हाथ में ले लिया। श्राद्ध की सभी तैयारी उन्होंने पूर्ण करायीं और श्राद्ध में

भोजन करने के लिये अपने आस–पास के सभी ब्राह्मणों एवं परिचितों को निमन्त्रित किया। श्राद्ध के दिन वे अपने दरवाजे के सामने बैठ कर निमन्त्रित ब्राह्मणों की प्रतीक्षा कर रहे थे। सभी भोज्य पदार्थ तैयार हो गया था, और उसकी गंध सुगंध आस पास फैल रही थी। निम्न–जातीय गरीब चार राही, जो इनके दरवाजे के पास से होकर जाने वाले रास्ते से गुजरे, धीरे–धीरे आपस में बात कर रहे थे, कि कितना सुगन्धित और उत्तम भोजन बनाया गया है। श्री एकनाथ जी ने उन चारों यात्रियों को बुलाकर सबसे पहले उन्हीं को भोजन कराया। बाद में जब ब्राह्मण लोग भोजन करने आये तो आपने उन लोगों की आना–कानी की उनकी मनोभावना जानकर सोलह ब्राह्मणों के लिए तुरन्त अलग भोज्य–पदार्थ तैयार करवाया। परन्तु ब्राह्मण लोग नाराज होकर लौट गये कि हमसे पूर्व आपने निम्न जातीय वर्ग को अपने श्राद्ध में भोजन कराया है, अतः हम आपके श्राद्ध में भोजन ग्रहण नहीं करेंगे। श्री एकनाथ जी ने पहले तो ब्राह्मणों से, अनेक प्रकार से भोजन ग्रहण करने के लिये निवेदन किया। परन्तु जब वे राजी नहीं हुए तो आपने हाथ में जल लेकर भोज्य पदार्थ ग्रहण करने के लिए पितरों का आह्वान किया। इस घटना का मुख्य अंश तो यह है कि पितरों ने सशरीर उपस्थित होकर श्राद्ध का भोजन सप्रेम ग्रहण किया।

इसी तारतम्य में श्री एकनाथ जी से सम्बन्धित एक और यौगिक प्रसंग का वर्णन करना उचित होगा। आपके गांव से काफी दूर का एक ब्राह्मण था जिसके पास 'पारस' पत्थर था। वह उस पत्थर को अपने प्राण से प्यारा समझता था और बड़े ही हिफाजत से रखकर उसकी रक्षा किया करता था। दैव योग से एक बार उसके मन में तीर्थ यात्रा करने का विचार दृढ़ता से बन गया। यात्रा में 'पारस' पत्थर साथ रखने से गायब होने का डर था और पारिवारिक जनों को सोपने पर हड़पने का डर था। अन्त में श्री एकनाथ जी के ऊपर ही उसका विश्वास हो पाया और अपना प्राण–प्यारा पारस पत्थर उसने श्री एकनाथ जी के पास ही रखना उचित समझा। जब वह तीर्थ यात्रा पर जाने लगा तो पारस पत्थर के साथ श्री एकनाथ जी के पास पहुँचा और पूरी बात बताकर प्रार्थना की कि, दुनिया में सिर्फ आप पर ही मेरा विश्वास है कृपया हमारा यह पारस पत्थर अमानत के तौर पर सुरक्षित रखने की कृपा की जाये। श्री एकनाथ जी ने मुस्कराकर स्वीकृति प्रदान करते हुए कहा, "इस पारस पत्थर को भगवान के सिंहासन के नीचे रख दो, इससे ज्यादा सुरक्षित स्थान हमारे पास दूसरा नहीं है।" ब्राह्मण 'पारस'

वहाँ रखकर तीर्थ–यात्रा पर चला गया।

जब ब्राह्मण की तीर्थ–यात्रा समाप्त हो गयी तो वापसी में वह सबसे पहले श्री एकनाथ जी के पास पहुँचा और उसने अपना 'पारस' पत्थर लौटाने की प्रार्थना की। आपने आदेश दिया, जहाँ रखे थे, वहीं होगा ले लो। ब्राह्मण ने भगवान के सिंहासन के नीचे देखा तो वहाँ 'पारस' नहीं था। उसे श्री एकनाथ जी पर शक पैदा हो गया। वह श्री एकनाथ जी को सन्देह की दृष्टि से देखता हुआ अपने पारस पत्थर की वापसी की प्रार्थना बार–बार करने लगा। श्री एकनाथ जी को उस ब्राह्मण की बारम्बार प्रार्थना पर दया आ गई। आपने श्री उद्धव नामक बालक को बुलाया जो नित्य प्रातः पिछले दिन भगवान को अर्पण किया हुआ सामान जैसे फूल, अच्छत, माला आदि प्रातः ही गोदावरी नदी में डालने जाया करता था। श्री एकनाथ जी ने सेवक उद्धव से इस विषय में जानना चाहा परन्तु उसने अनभिज्ञता प्रकट की। सेवक उद्धव ने प्रार्थना की कि महाराज जी! हो सकता है मेरी असावधानी से पारस पत्थर निर्माल्य के साथ गोदावरी में बह गया हो। उसकी प्रार्थनासुनकर श्री एकनाथ जी, ब्राह्मण के साथ गोदावरी नदी के किनारे गये। श्री एकनाथ जी ने गोदावरी नदी में अपना हाथ डाल कर पानी से छोटे–छोटे अनेक पाषाण खण्ड निकाले और अपना हाथ ब्राह्मण के सामने करके कहा, "इसमें से जो तुम्हारा पारस पत्थर हो, ले लो।" ब्राह्मण ने देखा कि उनके कमलवत् हाथ के सभी पाषाण पारस पत्थर ही हैं और वैसे ही हैं जैसा उस का पारस पत्थर था। श्री एकनाथ जी ने अपने हाथ से एक 'पारस' पत्थर उस ब्राह्मण को देकर शेष सभी को उसके सामने ही गोदावरी नदी में बहा दिया।

उस समय की प्रथा विपरीत आपने स्त्री और पुरुष दोनों वर्गों में समान रूप से योग–साधना की भागीरथी प्रवाहित करने का प्रयास किया। कम पढ़े लिखे होने के बावजूद आपने चतुः श्लोक भागवत, रुक्मिणी–स्वयंवर, चिरंजीव पद, भावार्थ रामायण, एकनाथी भागवत आदि अनेक ग्रन्थों की सुन्दर शब्दों में रचना की। अपनी छियासठ वर्ष की अवस्था (सम्वत् 1656 तक) , अनेक प्राणियों को आस्तिक और योग जिज्ञासु बनाकर, इस महान योगाभ्यासी साधक ने अपने नश्वर शरीर का त्याग किया। अब हम भी अपने प्रभु के श्री चरणों में साष्टांग प्रणाम के साथ लेख को यहीं विश्राम देते हुए यही प्रार्थना करते हैं, कि अपनी कृपा सदैव बनाये रखने की कृपा की जाये।

उपवास का दर्शन एवं तंत्र

योगी श्री हृदयनारायण जी

उपवास से प्रायः भोजन न करने का अर्थ समझा जाता है और इसका लक्ष्य प्रायः पाचन संस्थान को विश्राम देना होता है। उपवास गौण रूप में शारीरिक तथा मुख्य रूप में आध्यात्मिक उद्देश्य से प्रेरित होता है।

उपवास दो शब्दों का योगिक रूप है। उप और वास। उप का अर्थ है पास और वास का बैठना या वास करना। उपवास का उद्देश्य उस भगवान के पास बैठना है जो शक्ति, ज्ञान और आनन्द का अक्षय भंडार है। और अगर हम उपवास करने की सही विधि जान कर इसे अपनायें, तो जिस प्रकार आग के पास बैठने से हम उसके गुण उष्णता का अनुभव करते हैं, उसी प्रकार भगवान के पास बैठने से हमें शक्ति, ज्ञान, आनन्द की प्राप्ति हो सकेगी। परन्तु चूँकि उपवास से भोजन के त्यागमात्र तथा पाचन संस्थान को विश्राम देने का सही अर्थ लिया जाता है, इसलिये यहाँ हम भोजन त्याग के दर्शन एवं तंत्र (प्रविधि) पर ही विचार करेंगे। मानस साधना मंडल की पंच सूत्री साधना का यह द्वितीय अवयव है और इसमें युक्तियुक्त उपवास द्वारा अखण्ड शक्ति के जागरण का आश्वासन प्रदान किया गया है।

आपको खोजने पर यत्र-तत्र ऐसे अनेक उदाहरण पायेंगे जिनसे यह प्रमाणित होता है कि भोजन जीवनी शक्ति उत्पन्न नहीं करता वह केवल शरीर का निर्माता तत्व है। इस प्रकार भोजन न करने से शरीर का वजन (श्रम से होने वाली टूट-फूट की पूर्ति न होने से) भले ही कम हो जाये पर जीवनी शक्ति का ह्रास नहीं होता, यह निर्विवाद है। परन्तु जन-साधारण का यह अनुभव है और मेरी राय में असत्य नहीं है कि भोजन न करने से उन्हें निर्बलता की प्रतीति होती है और जैसे ही वे पुनः भोजन कर लेते हैं उन्हें श्रम के कार्य करने की शक्ति पुनः प्राप्त होती प्रतीत होती है। आइये इस विरोधाभास के कारणों की छ नबीन करें।

इस शरीर में जीवन की शक्ति मुख्यतः तीन प्रकार के कार्य करती है। पहला शरीर में भोजन करने पर उसका पाचन करती है, दूसरा हमारे दैनिक जीवन से सम्बन्धित श्रम के कार्य सम्पन्न करती है और तीसरा शरीर में एकत्र अवांछित विजातीय द्रव्य मल का निष्कासन करती है। इस जीवनी शक्ति की कुछ स्वभावगत विशेषतायें भी हैं।

उनमें से एक यह भी है कि इन तीन कार्यों में इसका उपयोग रुपये–पैसे की क्रम–शक्ति की भांति नहीं किया जा सकता जिससे जीवनी शक्ति की मात्रा को तीन भागों में बाँट कर एक ही समय में तीनों काम किये जा सकें बल्कि इसका उपयोग एक नौकर की भांति किया जा सकता है, जो एक समय में एक ही काम भली प्रकार से कर सकता है। उदाहरणार्थ आपने कभी न कभी यह अनुभव अवश्य किया होगा कि जब आप भोजन करने के बाद काम पर जाते हैं तो आलस्य का अनुभव करते हैं और जब किसी कारणवश भोजन किये बिना काम करने जाना पड़ता है तो काम पहले की अपेक्षा अधिक सुविधापूर्वक और अच्छे ढंग से सम्पन्न होता है। इसका कारण केवल यही है कि जब हम भोजन करते हैं तो जीवनी शक्ति उसे पचाने के काम में लगना चाहती है और हम उसे श्रम के काम में लगाना चाहते हैं। इसी खींचतानी में दोनों में से कोई काम नहीं हो पाता और जब हम बिना भोजन किये श्रम के काम करते हैं तब जीवनी शक्ति केवल श्रम के काम में ही लग जाती है और काम बहुत अच्छा होता है।

इस जीवनी शक्ति की एक दूसरी चरित्र–गत विशेषता भी है। चूंकि वर्तमान पीढ़ी के मानव के शरीर में मल संचय बहुत अधिक हो गया है इसलिए जीवनी शक्ति को जब भी अवसर मिलता है, वह स्वतः मल–निष्कासन के कार्य में जुट जाती है। इसलिए अगर हम भोजन न करें तो पाचन कार्य से मुक्त जीवनी शक्ति स्वतः मल–निष्कासन के कार्य में लग जाती है। आयुर्वेद में–

''आहारं पचनि शिखि

दोषानाहार वर्जितः''

सूत्र में इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। शिखि (जठराग्नि के रूप में जीवनी शक्ति) भोजन का पाचन करती है परन्तु आहार न देने पर वही जीवन–शक्ति मल–निष्कासन (दोषों के पचाने) का कार्य करती है। अब अगर शरीर में मल का संचय अधिक हुआ और उसको निकालना भी अति आवश्यक हुआ तो जीवनी शक्ति स्वभावतः यह चाहेगी कि पाचन कार्य से मुक्ति मिलने के साथ–साथ उसे श्रम के कार्य से भी मुक्ति मिले जिससे निष्कासन के आवश्यक कार्य को वह पूरे तौर से सम्पन्न कर सके।

सिद्धयोग का मार्ग

सिद्धयोग का मार्ग बड़ा विलक्षण है। उसमें आह भरने की फुरसत नहीं न शिकवा करने की गुन्जाइश। यह मार्ग विहङ्गम मार्ग है। इसमें उड़ने को निर्बाध आकाश मिल जाता है। उड़ने के लिए पंख मजबूत होने चाहिए फिर कुछ भी मुश्किल नहीं। श्री गुरुदेव का ध्यान करने से रोग ठीक हो जाते हैं। पर श्री सद्गुरुदेव की सही धारणा प्रत्येक व्यक्ति के वश की बात नहीं। इसके लिये हनुमान जी जैसा हृदय चाहिए। जो हृदय फाड़कर श्रीराम को दिखा सके। यदि श्री गुरुदेव में हनुमान जैसी अनन्य निष्ठा हो तो 'ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः' यह सिद्धान्त सबसे सरल है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण तथा तुरीय सभी शरीरों का ध्यान करना आना चाहिए।

- आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा

ध्यान-साधना की परम्परा कायम हो !

हमारे पूर्वजों ने ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल और सुख-समृद्धि का ज्ञान स्कूलों एवं कॉलेजों में जाकर नहीं लिया। उन्होंने अपनी अन्तःप्रेरणा और अनुभवों से ही सीखा कि ध्यान मन का मालिक बना देता है, अन्यथा जीवन भर मन की गुलामी ही गुलामी है। सच्ची स्वतन्त्रता मन के मालिक बनने में ही है। ध्यान हमारे भीतर के अनन्त ज्ञान को उद्घाटित करता है। इसलिए बचपन से ही ध्यान साधना की परम्परा, परिवार में, डाली जानी जरूरी है।

ध्यान-साधना से सहज-भाव अपने आप स्वास्थ्य लाभ होता है। ध्यान स्व में स्थित करता है और स्वास्थ्य शब्द का अर्थ भी-स्व स्थित, का संकेत करता है। अतः ध्यान ही स्वास्थ्य है और स्वास्थ्य ही ध्यान है। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ध्यान से हमारी छिपी शक्ति जो अनन्त है, जाग्रत होती है और तब हमें स्वास्थ्य भी मुफ्त मिलता है। लेकिन हमें यह मंजूर नहीं। स्वास्थ्य का खजाना हमारे अन्दर भरा पड़ा है, परन्तु हम उसे बाहर ढूंढने का व्यर्थ श्रम करते हैं तथा रोग हटाने के चक्कर में उलझते रहते हैं। आँख बन्द कर स्वरूप को जानिये और स्थित हो जाइये। इस साधना में एक क्षण ही तो लगता है।

-मोहनलाल

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 019/21-23 JANURARY 2024

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________

अवशेन्द्रिय चित्तानां हस्तिस्नानमिव क्रिया।
दुर्भगाभरण प्रायो ज्ञानं भार: क्रिया बिना।।
(हितोपदेश)

जिनके वश में चित्त और इन्द्रियां नहीं हैं उनकी क्रिया (कर्म) हाथी के स्नान के समान व्यर्थ है। बिना आचरण किये ज्ञान बोझ के समान है। जैसे कुरूप नारी के लिए आभूषण।